संस्थापित १८६७ ई.

ओ३म्

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२८ ● अंक : १७ ● २७ अप्रैल, २०२३ (गुरुवार) वैशाख शुक्लपक्ष सप्तमी सम्वत् २०८० ● दयानन्दाब्द १६६ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१६६०८५३१२४

महर्षि दयानन्द के बलिदान व देह त्याग के कुछ प्रेरक प्रसंग

-प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु

१- महर्षि दयानन्दजी महाराज ३१ मई सन् १८८३ की प्रातः जोधपुर पधारे। उनके जोधपुर पहुँचने के २६ दिन के पश्चात् जोधपुर महाराज जसवन्तसिंह ऋषिजी के दर्शन करने आए। महर्षि की जोधपुर यात्रा का गम्भीर अध्ययन करते हुए प्रबुद्ध पाठकों को यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए।

२- शाहपुराधीश नाहरसिंह तथा अजमेर के कई भक्तों ने जोधपुर जाने से रोका। जोधपुर को राक्षस-प्रदेश तक बताया। श्री नाहरसिंह ने कहा कि यदि वहाँ जा ही रहे हैं तो वेश्यागमन, व्यभिचार का अधिक खण्डन न कीजिए। यह दूसरा तथ्य है जिसे ऋषि जीवन के पाठकों को सदा स्मरण रखना चाहिए।

३- ऋषिजी ने चेतावनियाँ दिये जाने पर दो महत्त्वपूर्ण वाक्य कहे थे।

(क) ''मैं बड़े-बड़े कँटीले वृक्षों को नुहरने से नहीं काटा करता। उनके लिए तो अति तीक्ष्ण शस्त्रों की आवश्यकता होगी।

(ख) ''यदि लोग हमारी अंगुलियों की बत्तियाँ बनाकर जला दे तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्योपदेश करूंगा।

यह तीसरा तथ्य है जो ऋषि के जीवन-चरित्र का अध्ययन करनेवाले प्रत्येक पाठक को हृदयंगम करना चाहिए।

४- शाहपुराधीश ने महर्षिजी की सुख-सुविधा के लिए दो सेवक साथ दिये। इनमें से एक तो घोड़ों को छोड़कर अपने घर को चला गया और दूसरा कहीं वहीं शाहपुरा में छिपा रहा।

शाहपुरा के भेजे हुए कर्मचारी ऐसे दुष्ट व निकम्मे थे, यह चौथा तथ्य भी स्मरण रखना चाहिए।

५ - जोधपुर में पोपलीला व वेदविरुद्ध मतों के खण्डन के कारण नामधारी धर्माचार्यों का विरोधी बन जाना स्वाभाविक था ही। महाराजा की वेश्याओं में से प्रमुख नन्ही भक्तन (सचमुच वह बड़ी भक्तन थी, उसका बनवाया मन्दिर अब तक भी जोधपुर में है।) को वेश्यागमन का घोर खण्डन करना बहुत बुरा लगा। राज्य के शासन को चलानेवाले वहाँ दो ही तो व्यक्ति थे। एक नन्ही भक्तन और दूसरा मियाँ फैजुल्ला खाँ। फैजुल्ला खाँ के भतीजे मोहम्मद हुसैन ने तो तलवार पर हाथ रखाकर श्री महाराज को भरी सभा में धमकी दी थी। ऋषिजी ने इस धमकी का उपयुक्त उत्तर दे दिया।

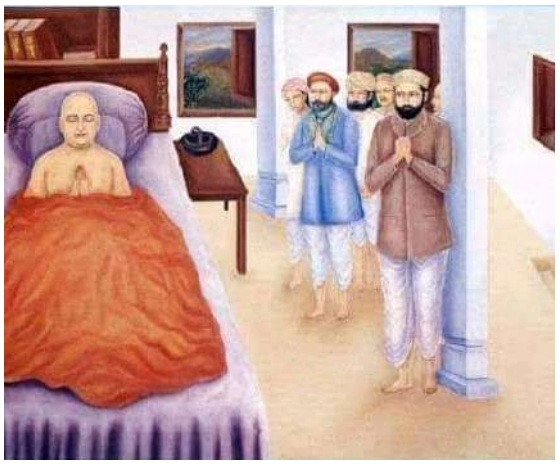

यह पाँचवाँ तथ्य है जो प्रबुद्ध पाठकों को नहीं भुलाना चाहिए।

६- २१ सितम्बर को श्री महाराज को उनके रसोइये धौड़ मिश्र ने ''दूध में संखिया मिलाकर. . पीने को दिया। ऋषि ने विषपान किया और इसका जो प्रभाव होना था सो वही हुआ। रसोइये का नाम क्या था? धौड़ मिश्र या जगन्नाथ? यह व्यर्थ का विवाद है। मुख्य बात यही है कि उन्हें दूध विष दिया गया। इन्दिरा गांधी को किसकी गोली पहले लगो? यह प्रश्न गौण है। मुख्य बात यह कि प्रधानमन्त्री के अङ्गरक्षकों ने ही विश्वासघात करके उसकी हत्या की। यह छठा तथ्य स्मरणीय है।

७- डा. अलीमर्दान ने जानबूझ कर मारने के लिए ऐसी औषधियाँ दीं कि वे बच ही न सकें। हितकर औषधि भी चौगुनी मात्रा से दी जावेगी तो परिणाम विपरीत ही निकलेगा। डॉ. सूरजमलजी ने डॉ. अलीमर्दान के घातक इलाज को ठीक न समझते हुए भी पाप को सहन किया। यह साहस करके सत्य-सत्य बात कह देते तो ऋषि की हत्या का अनिष्ट न होता। यह सातवाँ तथ्य है जो ध्यान में रहना चाहिए।

८- महर्षि का स्वास्थ्य बिगड़ता गया परन्तु आर्यजगत् को कोई सूचना नहीं दी गई अर्थात् भक्तों से सब कुछ छुपाया गया। १२ अक्तूबर सन् १८८३ को राजपूताना गजट में किसी प्रकार यह समाचार छप गया। इस पर अजमेर के एक आर्यसभासद् जेठमल ऋषि का पता करने जोधपुर गये। वह प्रथम आर्यपुरुष था जिसने जोधपुर में श्री महाराज से जाकर भेंट की। यह आठवाँ तथ्य है जो विशेष महत्त्व रखता है। यदि जेठमल वहाँ न जाते तो आर्यों को ऋषि का शव भी न मिलता।

९- जेठमल कवि भी था। उसने ऋषि जीवन पर एक काव्य रचा था। उसमें लिखा है कि रोम-रोम में विष प्रविष्ट हो चुका था।

१०- जेठमल First Eye witness प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है। महर्षि के विषपान अमर बलिदान

क्रमशः पृ. ४.....

वेदामृतम्

पवमान ऋतं बृहत्, शुक्रं ज्योतिरजीजनत् ।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत्।। ऋ० ६.६६.२४

यह जगत् सत्त्व, रजस्, तमस् गुणों का खेल है। सत्व गुण लघु है और प्रकाश को लाता है। रजोगुण चल है और कार्य में प्रवृत्त करता है। तमोगुण गुरु है और क्रिया-निरोध उत्पन्न करता है। यदि रजोगुण प्रवर्तक न हो तो सत्त्व और तमस् स्वयं प्रवृत्त नहीं हो सकते । इसी प्रकार तमोगुण निरोधक न हो तो रजस् और रजस् द्वारा प्रवृत्त सत्त्व सदा ही क्रियाशील बने रहें, कभी रुक ही नहीं। एवं तीनों गुण एक-दूसरे के सहायक होते हैं। ये तीनों जब उचित अनुपात में मिलते हैं, तब जीवन को उसी प्रकार प्रबुद्ध करते हैं, जिस प्रकार उचित अनुपात में मिट्टी, तेल, बत्ती और अग्नि मिलकर दीपक को प्रज्वलित करते हैं। किन्तु अनुपात में न्यूनता या आधिक्य होने पर अनर्थकारी हो जाते है। तमोगुण का आधिक्य विशेष रूप से तामसिकता, जड़ता, मोह, अज्ञान, अविवेक आदि को उत्पन्न कर देता है। उससे मनुष्य अविद्या-ग्रस्त हो जाता है। अनित्य जगत्, देह आदि को नित्य समझना, अशुचि स्व-शरीर, कान्ता-शरीर आदि को शुचि समझना, दुःख-रूप वैषयिक सुख को वास्तविक सुख समझना और अनात्म-भूत देह, इन्द्रिय आदि को आत्मा समझना ही अविद्या है। हृदय में अविद्या का साम्राज्य हो जाने पर मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव सभी तामसिक हो जाते हैं। घनघोर काले तमोगुणों से आच्छन्न होकर मनुष्य दिशाभ्रष्ट हो जाता है। तमोगुण की इस काली निशा को काटनेवाला पवमान सोम के अतिरिक्त अन्य कौन है ? पावक सोम प्रभु ही चाँद बनकर कृष्णा रात्रि के काले तमों को विच्छिन्न करते हैं, पुनः पुनः अतिशय तीव्रता के साथ अपनी दिव्य किरणों के प्रहार से जर्जर करते हैं। वे न केवल तम को नष्ट करते हैं, अपितु सत्त्व-गुण की पवित्र ज्योति को, सत्त्व-गुण की निर्मल चन्द्रिका को भी जन्म देते हैं। सत्त्व की शुद्ध-शुभ्र ज्योति के जन्म से अन्तःकरण में 'बृहत् ऋत' का, महती ऋतंभरा प्रज्ञा का, उदय होता है, जिससे साधक को निर्विकल्पक समाधि का आनन्द प्राप्त होता है।

हे पवमान सोम ! आज मेरा यह सौभाग्य है कि तुमने मेरे हृदयान्तरिक्ष में उदित होकर तमोगुण के समस्त तमस्तोम को नष्ट-भ्रष्ट कर सत्त्व की पवित्र ज्योति को तथामहान् ऋत को जन्म दिया है। इस दिव्य जन्म पर मैं मुग्ध हूँ और मेरी कामना है कि यह मुझ में सादा के लिए स्थिर हो जाए। हे परमात्मन् ! तुम सदा मेरे हृदय-गगन में चन्द्र बन चमकते रहो।

साभार-वेद मंजरी

युवा मनीषी-पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी

संकलनकर्ता- डॉ० विवेकआर्य

पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी जी की जयंती २६.४.१८६० पर विशेष रूप से प्रकाशित

पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी जी एक युवक दार्शनिक विद्वान् थे जिन्होंने चौबीस वर्ष (२४) की अल्पायु में ही संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, वैदिक साहित्य, अष्टाध्यायी, भाषा विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, वनस्पति शास्त्र, नक्षत्र विज्ञान, शरीर विद्या, आयुर्वेद, दर्शन शास्त्र, इतिहास, गणित आदि का जो समयक ज्ञान प्राप्त कर लिया था , उसे देख कर बड़े-बड़े विद्वान चकित रह जाते थे।उनके ज्ञान का अनुमान लगाना पर्वत को तोलना था।

गुरुदत्त जी का एक वर्ष (सन् १८८८) का कार्य और उपलब्धियां:

-- स्वर विज्ञान का अध्ययन
-- वेद मन्त्रों के शुद्ध तथा सस्वर पाठ की विधि का प्रचलन
-- दिग्गज साधुओं को आर्यसमाजी बनाया
-- कई व्याख्यान किये तथा कई लेख और ग्रन्थ लिखे
-- पाश्चात्य लेखकों के द्वारा आर्यधर्म पर किये गये पक्षपातपूर्ण आक्षेपों के उत्तर दिए
-- शिक्षित वर्ग इस विद्यावारिधि के पास शंका समाधान के लिए आता रहा

पंडित जी गूढ़ से गूढ़ प्रश्न का उत्तर सरलता से देते थे। दार्शनिक गुत्थी उनके समक्ष गुत्थी ही न रहती।

इस नवयुवक के एक वर्ष के कार्य एवं उपलब्धियाँ महापुरुषों में उच्च स्थान दिलवाने के लिए पर्याप्त हैं।

सन्दर्भ : डा. राम प्रकाश जी की पुस्तक -''पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी''

● वेद और योग का दीवाना - पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी

क्रमशः पृ. ४.....

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

आध्यात्मिक चिन्तन

''सबसे बड़ी शिक्षा है, 'उत्तम व्यवहार'। 'उत्तम व्यवहार' के बिना, अनेक डिग्रियां प्राप्त करने पर भी, व्यक्ति मूर्ख और अनपढ़ ही कहलाता है। जैसे रावण और दुर्योधन आदि।''

''विद्या ददाति विनयम्।'' यह प्रसिद्ध वाक्य आपने अनेक बार पहले भी सुना होगा। इसका अर्थ है ''विद्या नम्रता को देती है'', अर्थात् जो व्यक्ति सच्ची विद्या को प्राप्त कर लेता है, उसमें नम्रता अवश्य ही आती है। यह विद्या का मुख्य फल है।

यदि कोई व्यक्ति विद्या पढ़ कर भी विनम्र नहीं हुआ, असभ्यता पूर्ण व्यवहार ही करता रहा, तो इसका अर्थ है, कि वह कुसंस्कारी तथा अभिमानी होने के कारण विद्या के सही स्वरूप को नहीं समझ पाया। ''जिसने विद्या के सही स्वरूप को नहीं समझा, और उसका ठीक ठीक लाभ नहीं उठाया, उसे पढ़ा-लिखा या विद्वान नहीं कहना चाहिए, बल्कि मूर्ख और अनपढ़ कहना चाहिए। जैसे रावण और दुर्योधन आदि।''

इतिहास के अनेक उदाहरण आप सब लोग जानते हैं। उनमें से रावण और दुर्योधन बहुत पढ़े लिखे होने पर भी ''मूर्ख और अनपढ़'' ही कहलाते हैं। इसीलिए हजारों और लाखों वर्षों से आज तक उनका अपमान हो रहा है। ''किसी का अपमान २ वर्ष तक होता है, किसी का २० वर्ष, किसी का ५० वर्ष, और किसी का हजारों-लाखों वर्ष तक। रावण तो लाखों वर्षों से अपमानित हो रहा है। दुर्योधन को भी लगभग ५,००० वर्ष हो गए। ये दुष्ट लोग अभी तक अपमानित हो रहे हैं।'' ''इनकी मूर्खताएं और दुष्टताएं इतनी अधिक रही हैं, कि आज तक भी जनता का गुस्सा इन पर जारी है, वह समाप्त नहीं हुआ।''

इसका अर्थ है, कि रावण और दुर्योधन ने विद्या पढ़कर भी नम्रता नहीं सीखी, और अभिमान में चूर रहने के कारण बहुत से अन्य दोष भी अपना लिए। ''यदि वे वास्तव में संस्कारी होते और विद्या को कुछ अच्छे ढंग से आत्मसात करते, तो उनमें सभ्यता नम्रता सेवा परोपकार दान दया आदि बहुत से उत्तम गुण होते।'' अस्तु।

''अब रावण और दुर्योधन आदि तो संसार से चले गए। परंतु उनके अनुयाई उनके वंशज आज भी जीवित हैं।'' आज भी ऐसे लोग मिलते हैं, जो रावण और दुर्योधन की तरह अति अभिमानी होकर दुष्टता पूर्वक समाज को अनेक प्रकार से दुख देते हैं।

''यदि कोई व्यक्ति आज भी अपने दोषों को स्वीकार करने का साहस रखता हो, और उत्तम गुणों को सीखने की इच्छा भी रखता हो, कोई अच्छा संस्कारी व्यक्ति हो, और वह सभ्यता नम्रता आदि गुणों को धारण करने की इच्छा रखता हो, तो वह बहुत कुछ सीख सकता है।'' वह दुष्टता आदि दोषों से बचकर नम्रता सभ्यता आदि गुणों को धारण करके स्वयं भी सुख से जी सकता है, तथा दूसरों को भी सुख दे सकता है।

उत्तम संस्कारी लोग पुरुषार्थ करके बहुत उन्नति प्राप्त कर लेते हैं। भूतकाल में उनके भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। ''श्री रामचंद्र जी, श्री कृष्ण जी महाराज, महर्षि दयानंद सरस्वती जी, महर्षि कणाद गौतम कपिल जैमिनि इत्यादि बहुत से महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने विद्या को पढ़ कर, उस का सच्चा सम्मान किया। और उस विद्या के आशीर्वाद से उत्तम गुणों को धारण करके संसार को अत्यंत सुख दिया। हम आप सबको भी उन जैसा ही बनने का प्रयत्न करना चाहिए।''

उत्तम गुणों को धारण करने के लिए मनुष्य को बहुत त्याग व तप की आवश्यकता होती है पूर्वजन्म के संस्कारों को छोड़ने के लिए दृढ़ता पूर्वक त्याग करना आवश्यक है आत्मा में दृढ़ता ईश्वर की उपासना से आती है मनुष्य की इंद्रियां उसे विषयों में खींचती हैं। जैसा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में मनु महराज के ये श्लोक उचित ही लिखे है-

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्।।

अर्थात-जैसे विद्वान सारथी घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा को खोटे कामों में खैंचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करें। क्योंकि-

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषम् ऋच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति।।

अर्थ-जीवात्मा इन्द्रियों के वश होके निश्चित बड़े-बड़े दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को वश में करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन्द्रियों के वशीभूत होकर ही मनुष्य पतित होता है और लोक निन्दित होता है। -सम्पादकीय

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ त्रयोदश समुल्लास

अथ कृश्चीनमत विषयं व्याख्यास्यामः

जबूर का दूसरा भाग

काल के समाचार की पहली पुस्तक

६०-सो परमेश्वर ने इसराएल पर मरी भेजी और इसराएल में से सत्तर सहस्र पुरुष गिर गये।।

-जबूर २ काल० पु० प० २१। आ० १४।।

(समीक्षक) अब देखिये इसराएल के ईसाइयों के ईश्वर की लीला! जिस इसराएल कुल को बहुत से वर दिये थे और रात दिन जिनके पालन में डोलता था अब झट क्रोधित होकर मरी डाल के सत्तर सहस्र मनुष्यों को मार डाला। जो यह किसी कवि ने लिखा है सत्य है कि-

क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः॥

जैसे कोई मनुष्य क्षण में प्रसन्न, क्षण में अप्रसन्न होता है, अर्थात् क्षण-क्षण में प्रसन्न अप्रसन्न होवे उसकी प्रसन्नता भी भयदायक होती है वैसी लीला ईसाइयों के ईश्वर की है।।६०।।

ऐयूब की पुस्तक

६१- और एक दिन ऐसा हुआ कि परमेश्वर के आगे ईश्वर के पुत्र आ खड़े हुए और शैतान भी उनके मध्य में परमेश्वर के आगे आ खड़ा हुआ।। और परमेश्वर ने शैतान से कहा कि तू कहा से आता है ? तब शैतान ने उत्तर दे के परमेश्वर से कहा कि पृथिवी पर घूमते और इधर उधर से फिरते चला आता हूँ।। तब परमेश्वर ने शैतान से पूछा कि तूने मेरे दास ऐयूब को जांचा है कि उसके समान पृथिवी में कोई नहीं है वह सिद्ध और खरा जन ईश्वर से डरता और पाप से अलग रहता है और अब लो अपनी सच्चाई को धर रक्खा है और तूने मुझे उसे अकारण नाश करने को उभारा है।। तब शैतान ने उत्तर दे के परमेश्वर से कहा कि चाम के लिये चाम हाँ जो मनुष्य का है सो अपने प्राण के लिये देगा। परन्तु अब अपना हाथ बढ़ा और उसके हाड़ मांस को छू तब वह निःसन्देह तुझे तेर सामने त्यागेगा।। तब परमेश्वर ने शैतान से कहा कि देख वह तेरे हाथ में है, केवल उसके प्राण को बचा।। तब शैतान परमेश्वर के आगे से चला गया और ऐयूब को सिर से तलवे लों बुरे फोड़ों से मारा।।

-जबूर ऐयू० प० २। आ० १ २ ३ ४ ५।। ६।। ७।।

(समीक्षक) अब देखिये ईसाइयों के ईश्वर का सामर्थ्य! कि शैतान उसके सामने उसके भक्तों को दुःख देता है। न शैतान को दण्ड, न अपने भक्तों को बचा सकता है और न दूतों में से कोई उसका सामना कर सकता है। एक शैतान ने सब को भयभीत कर रक्खा है। और ईसाइयों का ईश्वर भी सर्वज्ञ नहीं है। जो सर्वज्ञ होता तो ऐयूब की परीक्षा शैतान से क्यों कराता ?।।६१।।

उपदेश की पुस्तक

६२ - हां! अन्तःकरण ने बुद्धि और ज्ञान बहुत देखा है। और मैंने बुद्धि और बौड़ाहपन और मूढ़ता जान्ने को मन लगाया। मैंने जान लिया कि यह भी मन का झंझट है। क्योंकि अधिक बुद्धि में बड़ा शोक है और जो ज्ञान में बढ़ता है। सो दुःख में बढ़ता है।।

-ज० उ० प० १। आ० १६ १७ १८।।

(समीक्षक) अब देखिये ! जो बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची हैं उनको दो मानते हैं। और बुद्धि वृद्धि में शोक और दुःख मानना विना अविद्वानों के ऐसा लेख कौन कर सकता है? इसलिये यह बाइबल ईश्वर की बनाई तो क्या किसी विद्वान् की भी बनाई नहीं है। ६२।।

यह थोड़ा सा तौरेत जबूर के विषय में लिखा। इसके आगे कुछ मत्तीरचित आदि इज्जील के विषय में लिखा जाता है कि जिसको ईसाई लोग बहुत प्रमाणभूत मानते हैं। जिसका नाम इज्जील रक्खा है उसकी परीक्षा थोड़ी सी लिखते हैं कि यह कैसी है।

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

अनेक विषय

(भगत जीवनलाल कायस्थ मुजफ्फरनगर से प्रश्नोत्तर-सितम्बर, १८८०)

प्रश्न- प्रथम दिन अज्ञान की निवृत्ति और ज्ञान की प्राप्ति के विना दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति होती है या नहीं ?

उत्तर- स्वामी जीं सुख दो प्रकार के होते हैं-एक विद्याजन्य, एक अविद्याजन्य । विद्याजन्य ऐसा सुख होता है जिसको सर्वसुख कहते हैं और अविद्याजन्य ऐसा होता है कि जैसा पशु आदि को । अज्ञान की निवृत्ति विना ज्ञान के नहीं होती है और न ज्ञान की निवृत्ति विना अज्ञान के । जीव के अल्पज्ञ होने से एक विषय में उसको ज्ञान होता है और अनेक विषय में अज्ञान । और जो सर्वज्ञ है उसमें अज्ञान नहीं रहता और जो अल्पज्ञ है उसमें ज्ञान और प्रज्ञान दोनों रहते हैं और जो सर्वज्ञ है वह अल्पज्ञ नहीं और जो अल्पज्ञ है वह सर्वज्ञ नहीं। जो अल्पज्ञ है वह परिमित और एकदेशी होता है और जो सर्वज्ञ है वह अनन्त सर्वदेश वस्तु काल रहित है। जैसे प्रकाश सब मूर्तिमान् द्रव्यों में व्यापक है और मूर्तिमान् द्रव्य व्याप्य हैं। व्यापक उसको कहते हैं जो सर्वदेश स्थित हो और व्याप्य उसको कहते हैं जो एक देशी हो । व्याप्य वस्तु व्यापक से भिन्न होती है। तीनों अवस्था उसकी व्यापक के साथ ही रहती और जैसे मूर्तिमान् द्रव्य किसी अवस्था में प्रकाश नहीं हो सकते और प्रकाश मूर्तिमान् द्रव्य का स्वरूप भी नहीं हो सकता। इसी से दोनों वस्तु भिन्न हैं अर्थात् व्याप्य व्यापक दो वस्तु विशिष्ट रहती हैं, एक वस्तु विशिष्ट नहीं हो सकती ।

रात के ग्यारह बज गये इसलिए वार्तालाप पूर्ण न हुआ।

दूसरे दिन बातचीत के बीच में स्वामी जी ने कहा कि इन पोप जी की लीला है। पार्वती ने अपने शरीर से मैल उतार कर बालक बनाकर रख दिया, द्वार पर युद्ध हुआ, पार्वती को विदित न हुआ, चूहे की सवारी और हाथी का शिर लगा दिया ।

मैंने कहा कि इसमें तो कुछ आश्चर्य नहीं प्रतीत होता क्यों कि पार्वती के तो हाथ थे और शरीर से मैल उतार कर पुतला बना सकते हैं परन्तु आप यह कहते हैं कि तीन वस्तुएँ अनादि हैं, जब स्थूल सृष्टि हुई तो निरवयव परमात्मा ने संयोग कर दिया। वह निरवयव परमाणु का संयोग विभाग कैसे कर सकता है ?

''स्वामी जी ने कहा कि तुम परमाणु जानते हो ? झरोके में जो दिखाई देते हैं उनको त्रसरेणु कहते हैं उनका ६०वाँ भाग परमाणु होता है। तुम उस सरमाणु का अपने हाथों से संयोग-वियोग नहीं कर सकते। परमात्मा उन परमाणुओं की अपेक्षा अति सूक्ष्म है, उसकी दृष्टि में वे स्थूल हैं इसलिए वह संयोग-वियोग कर सकता है।

इस पर मैंने यह निवेदन किया कि जो परमेश्वर सूक्ष्म है वह व्यापक कैसे है ?

स्वामी जी ने कहा कि जो सूक्ष्म होता है वह व्यापक होता है, स्थूल कहीं व्यापक नहीं होता। जैसे आकाश सूक्ष्म है इसलिये वह व्यापक है परन्तु पृथिवी स्थूल है सो व्यापक नहीं।

मैंने कहा कि यदि परमेश्वर की व्यापकता आर्य प्रकाश की भांति मानते हैं तो इससे जीव और ईश्वर के स्वरूप में भिन्नता माननी पड़ेगी।

स्वामी जीं इसका पहले उत्तर हो चुका है। अभिन्नता कदापि नहीं, व्यापकव्याप्य भाव रहता है।

वैदिक देव यज्ञ
(एक विनियोगात्मक अध्ययन)

-डॉ. सुशील कुमार वर्मा

आदिकाल से ही मानव आनन्द प्राप्ति एवं आत्मोन्नति के लिए प्रयत्नशील रहा है। इसी लक्ष्य सिद्धि के लिए, योगी, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक, सभी सतत कार्य करते आ रहे हैं। यज्ञ इस साधना का एक उत्कृष्ट रूप है।

मनुष्य का कर्तव्य है कि वह चिन्तन करे कि उसे अपने साथ क्या करना है?

उत्तर यही होगा कि वह अपने शरीर अथवा पिण्ड में ईश्वर के गुणों का ध्यान करे। फिर प्रश्न उठता है कि वह अन्यों के साथ क्या करे? तो जिस प्रकार वह अपने शरीर में ईश्वर का ध्यान कर रहा है उसी प्रकार समाज में उस ईश्वर के प्रकाश को देखे । जब ईश्वर की सत्ता की अनुभूति होती है तो ईश्वर शक्ति का संचार प्रारम्भ हो जाता है। अपने शरीर के अंग अंग में उस परमपिता परमात्मा के प्रति कृतज्ञता स्फुटित होती है और उस कृतज्ञता को यज्ञ के माध्यम से प्रकट करता है। कर्त्तव्य पालन भी यज्ञ कहलाता है। इस संसार में तीन लोक हैं, तीन यज्ञ हैं और तीन ही ऋण हैं, जिससे मनुष्य को उऋण होना है।

१. जनहित कार्य किये, अच्छी सन्तति हुई तो पितृ ऋण से, वायु, जल, पर्यावरण की शुद्धि की तो देवऋण से, और किसी को पढ़ा दिया, उपदेश कर दिया तो ऋषि ऋण से उऋण हो जाता है।

२. स्थूल शरीर से भूलोक पर रहने वाले प्राणियों को सुख पहुँचाये, श्रेष्ठ सन्तति इस राष्ट्र के प्रति समर्पित हो तो यह आधिभौतिक यज्ञ । अन्तरिक्ष में देवताओं का वास है। वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से है। मन, अन्तःकरण, प्राण आदि की स्थिरिता इसी से है। प्राकृतिक शक्तियों से जो लगातार सुख की प्राप्ति होती है वह देव ऋण है इसके लिये आधिदैविक यज्ञ ही उऋणता का साधन है। इसी प्रकार द्युलोक ज्ञान का लोक है जिससे मनुष्य को ज्ञान एवं आनन्द आदि का परम लाभ प्राप्त हो रहा है। स्वयं विद्या का स्वाध्याय और उपदेश कर दूसरों को पढ़ाकर जो यज्ञ किया जाये वह आध्यात्मिक यज्ञ है।

यज्ञ की परम्परा, यज्ञ की भावना एवं अग्निहोत्र की प्रेरणा मानव को स्वयं परमपिता परमात्मा से प्राप्त हुई।

उतिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।

आयुः प्राणं प्रजां पशून, कीर्तिं यजमानं च वर्धय

सृष्टि कर्ता ने स्वयं एक शाश्वत यज्ञ का आयोजन कर रखा है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋच : सामानि जज्ञिरे।

छन्दासि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।।

प्रकृति में एक नैसर्गिक चक्र की व्यवस्था है जिसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ पुनः अपने मूल स्थान पर पहुँचता है। इसी आधार पर अहोरात्र चक्र, ऋतुचक्र, वर्ष चक्र एवं सौर चक्र आदि व्यवस्थित हैं। इसी प्राकृतिक चक्र को पारिभाषित शब्दावली में यज्ञ कहा जाता है। यजुर्वेद एवं ऋग्वेद में वर्ष रूपी यज्ञ में वसन्तऋतु आज्य (घृत) है, ग्रीष्म ऋतु समिधा एवं शरद ऋतु हव्य है। (ऋग् १०/६/६, यजु ३१/१४)

अग्निहोत्र को अहोरात्र से, दर्शपौर्णमास को कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष से, एवं चातुर्मास्य को तीन ऋतुओं के साथ यज्ञों की कल्पना की गई। गोपथ ब्राह्मण में २१ प्रकार के यज्ञ वर्णित हैं जिनमें सात स्मार्त, सात हविर्यज्ञ और सात सोमयाग श्रौत हैं।

मनुष्य का लक्ष्य तो मोक्ष प्राप्ति ही है। परन्तु मोक्ष केवल कर्म से ही नहीं हो सकता और न ही केवल ज्ञान प्राप्ति से प्राप्य है। वह तो प्राप्त होता है ज्ञान और कर्म के समुच्चय से। यज्ञ कर्म करने से मन की पवित्रता प्राप्त होती है और मन की पवित्रता से आत्मा की निर्मलता। आत्मा की निर्मलता से मोक्ष प्राप्ति।

वास्तव में यज्ञ की विस्तृत परिभाषा है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के शब्दों में ''यज्ञ उसको कहते हैं जिसमें विद्वानों का सत्कार यथा योग्य शिल्प तथा रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्र जिसमें वायु वृष्टि जल ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाता है।''

अग्निहोत्र यज्ञ प्रारम्भ का प्रतीक है, जो अश्वमेघ यज्ञ तक पहुँचता है। अश्वमेघ यज्ञ उस पवित्र भावना की पराकाष्ठा है जिसके द्वारा हम राष्ट्र को अपना सर्वस्व समर्पित करते हैं।

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्''

स्वामी जी अग्निहोत्र को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि ''अग्नि का परमेश्वर के लिये, जल और पवन की शुद्धि वा ईश्वर की आज्ञा पालन के अर्थ होत्र-जो हवन अर्थातु दान करते हैं उसे अग्निहोत्र कहते हैं।

''यज्ञः देवपूजा संगतिकरण दानेषु''

देवपूजा-

देव वह जो देता है (देवा दानात्) और बदले में कुछ नहीं चाहता जैसे सूर्य, वायु, वृक्ष, पृथिवी आदि जड़ देव। माता पिता आचार्य आदि चेतन देव और समस्त संगतिकरण-देवों के देव महादेव परमेश्वर। पूजा का अर्थ है 'पूजनं नाम सत्कारः'।

संगतिकरण-

सृष्टि में उपलब्ध पदार्थों के संश्लेषण विश्लेषण तथा संयोग वियोग द्वारा उनके गुण दोषों का अनुसन्धान करके उनसे उपयोग करना संगतिकरण कहलाता है। रुढ़ि अर्थ कि केवल लोगों को जोड़ लेना, इकट्ठा कर लेना ही नहीं।

दान-

देवों को देना दान के अन्तर्गत आता है। हम प्रकृति व समाज से जितना लें उससे अधिक दें, यही दान कहलाता है। अग्निहोत्र के माध्यम से हम पर्यावरण शुद्धि करते हैं। क्योंकि अग्नि को देवताओं को मुख या वाहन कहा जाता है- **'हव्यवाट'** ।

ब्रह्मयज्ञ में साधक उस प्रभु के आन्तरिक प्रकाश को देखने के लिये उत्सुक होकर अन्तर्मुख होने का प्रयत्न करता है। उसी प्रकार साधक भौतिक देवताओं में प्रभु की ज्योति को अनुभव करता है और उस प्रभु की बाह्य विभूतियों को देखकर उसका ध्यान करता हुआ विराट् स्वरूप का चिन्तन करता है। फलस्वरूप अग्निहोत्र अथवा देवयज्ञ की ओर अग्रसर होता है।

वायु की शुद्धि तो घी सामग्री और समिधा से हो जाती है परन्तु लक्ष्य तो आन्तरिक चित्त शुद्धि का है। अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार-इन सब की शुद्धि कैसे हो । मन की शुद्धि श्रद्धा से, बुद्धि की विश्वास से, चित्त की तप से, और अहंकार की शुद्धि त्याग से।

इन सब का साधन है ज्ञान, कर्म और उपासना। बुद्धि में विश्वास बिना ज्ञान केटिक नहीं सकता। त्याग और तप, कर्म से होते हैं। मन में श्रद्धा भक्ति न हो तो कर्म हो ही नहीं सकता। इसलिये यज्ञ कर्म ही एक मात्र साधन है अन्तःकरण की शुद्धि का ।

जो केवल वाणी से यज्ञ करते हैं जिसे हम वैखरी कहते हैं, उनकी वाणी तो पवित्र हो जाती है परन्तु जीवन सुगन्धित नहीं होता। क्योंकि वाणी में अहंकार का दोष रहता है, जो चित्त शुद्धि की भावना से यज्ञ करता है मानो उसका घी जलता है। घी विष का नाश करता है, स्निग्धता लाता है, अमृत वर्षा का हेतु है। और जो मन के ईश बनने के लिए यज्ञ करते हैं मानो सामग्री भी साथ जलती है। पूरी भावना से यज्ञ करने वाला मनुष्य मन का स्वामी शुद्ध चित्त और वाणी के प्रकाश वाला होता है।

अग्निहोत्र सभी आश्रमों के लिये- ब्रह्मचारी के लिये- शतपथ ब्राह्मण की कथानुसार ब्रह्म ने सभी प्रजाओं को मृत्यु के लिये दे दिया परन्तु ब्रह्मचारी को नहीं दिया। इस पर मृत्यु ने आपत्ति प्रकट की। प्रत्युत्तर में ब्रह्म का कहना था कि जिस रात्रि ब्रह्मचारी अग्नि में समिधा न देगा उस रात्रि को तेरा उसमें भाग होगा। अर्थात् मृत्यु उसकी आयु में से कुछ अंश ले लेती है। तात्पर्य यह है कि अग्निहोत्र ब्रह्मचारी के लिये अनिवार्य है। मनु ने भी ब्रह्मचारी के कर्तव्यों में अग्निहोत्र आवश्यक बताया है।

गृहस्थ के लिये तो पंचमहायज्ञों का विधान है।

''अग्निहोत्रं च जुहुयादाधत्ते द्युनिशोः सदा'' (मनु स्मृति ४/२५)

वानप्रस्थ में भी यज्ञ नहीं छुटता। मनु का आदेश है-

'अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्नि परिच्छदम्' (मनु स्मृति ६/२४)

संन्यास में भौतिक अग्नि तो आवश्यक नहीं परन्तु आत्मिक अग्निहोत्र तो संन्यासी को करना ही पड़ता है।

आत्मन्यग्नीनू समारोप्य ब्राह्मणः प्रवजेद् गृहात्। (मनु स्मृति ६/३८)

संक्षिप्त में स्वामी जी के अनुसार यज्ञ उसको कहते हैं जिसमें-

१. विद्वानों का सत्कार ।

२. यथायोग्य शिल्प अर्थातु रसायन जोकि पदार्थ विद्या उससे उपयोग।

३. विद्यादि शुभ गुणों का दान।

४. अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि जल, औषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाता है उसको उत्तम समझता हूँ।

स.प्र. स्वमन्तव्यामन्तव्यः प्रकाश

यजुर्वेद के भाष्य में अग्निहोत्र को इस प्रकार परिभाषित किया है।

१. विद्वानों का सत्कार

२. पदार्थों के संगतिकरण द्वारा शिल्पविद्या का प्रत्यक्षीकरण और विद्वानों का संगतिकरण ।

३. शुभ विद्या, सुख, धर्मादि गुणों का नित्यदान करना वर्णित है, होम से भी हवि का अग्नि में दान होने से दान में अग्निहोत्र भी आ जाता है। अग्निहोत्र सभी आश्रमों के लिये और मृत्यु पर्यन्त करने वाला नित्य कर्म है शतपथ में अग्निहोत्र में **''जरामर्य सत्र''** कहा गया है।

''एतद्वै जरामर्य सत्रं यदग्निहोत्रं, जरया वा ह्यो वास्मान्मुच्यते मृत्यु ना वा'' (शतपथ ब्रा. १२/१/११)

अर्थातु शरीर के जीर्ण और अशक्त हो जाने पर उससे छुटकारा मिलता है या मृत्यु उपरान्त।

अग्निहोत्र का काल -

इस विषय पर सत्यार्थ प्रकाश के चौथे समुल्लास में अथर्ववेद के मन्त्र उद्धृत किये हैं।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्यदाता ।

प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता ।।

(अथर्व १६/५५/३-४)

इसी प्रकार ऋग्वेद में **''उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् नमो भरन्त एमसि''** (ऋग् १/१/७)

तै. आरण्यक का वचन है कि सायं प्रातः अग्निहोत्र करने से घरों का उद्धार होता है।

''अग्निहोत्रं सायं प्रातर्गृहाणां निष्कृतिः'

इसी प्रसंग में महर्षि दयानन्द अग्निहोत्र प्रकरण में

क्रमशः पृ. ७.....

पृष्ठ १ का शेष......

का उसने उस युग में वैर विरोध का सामना करते हुए वैदिक धर्म को स्वीकार किया था। उसने सत्य के लिए विरोध की कुछ भी चिन्ता न की। उसी सत्यनिष्ट निर्भीक जेठमल की साक्षी का इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। यह दशवाँ तथ्य है जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

११- जोधपुराधीश का भाई सर प्रतापसिंह बड़ा कपटी व धूर्त था। जब ऋषि को विष दिया गया तो यह व्यक्ति जिसने उन्हें निमन्त्रण भिजवाया व बुलवाया था उन्हें मृत्यु शय्या पर छोड़कर स्वयं पूना में जुआ खेलने चला गया। इसके लिए ऋषि का कोई महत्त्व न था, इसकी रुचि इस निन्दनीय पाप कर्म में थी सो वहाँ मस्ती से जुआ खेलता रहा। उसे ऋषिभक्त बताना भयङ्कर भूल है। वह तो घोर पापी था। यह ग्यारहवाँ तथ्य भुलाया नहीं जा सकता। उसने अपने जीवन काल में अपने द्वारा प्रकाशित करवाये अपने आत्म-वृत्त में तथा अपनी आत्म-कथा में महर्षि की कभी चर्चा ही नहीं की। ऋषि से यज्ञोपवीत भी न लिया।

१२- महर्षि एक विद्रोही साधु थे। वे स्वदेशाभिमानी, स्वराज्य के मन्त्रद्रष्टा और विदेशी राज के घोर विरोधी थे। यह सबको मान्य है, परन्तु सर प्रतापसिंह वह व्यक्ति था जिसे अंग्रेजों ने सर्वाधिक उपाधियाँ दीं। इतनी उपाधियाँ तो अंग्रेजों ने महाचाटुकार और महाकपटी निजाम को भी नहीं दीं। यह बारहवाँ तथ्य है जो ध्यान देने योग्य है।

१३- अजमेर के प्रसिद्ध हकीम पीर इमाम अली ने औषधि देते हुए कहा था कि ऋषिजी को विष दिया गया है और यह भी कहा था कि मैं संखिया निकाल दूंगा। यह तथ्य पंद्र लेखरामजी के लिखे जीवन- चरित में स्पष्ट रूप से दिया गया है। इस तथ्य का स्मरण रखिए।

१४- सर प्रतापसिंह ने स्वयं डां० दीवानचन्द पूर्व उपकुलपति आगरा विश्वविद्यालय को कहा था कि मुझे दुःख है कि महर्षि को जोधपुर में विष दिया गया था जिससे उनकी मृत्यु हो गई। यह बात प्रतापसिंह ने पं० लेखरामजी रचित जीवन-चरित के छपने से पहले जोधपुर में ही कही थी। डॉ. दीवानचन्द ने यह तथ्य अपनी आत्मकथा में दिया है।

१५- ऋषि ने अजमेर में देह का त्याग किया था। अजमेरवालों ने महर्षि के अन्तिम दिनों का जो प्रामाणिक व विस्तृत वृत्तान्त तत्काल 'आर्यसमाचार' मासिक मेरठ में भेजा था उसमें एक से अधिक बार विष दिये जाने की चर्चा है। 'आर्यसमाचार' का वह अङ्क मेरे पास है। यह तथ्य अति महत्त्वपूर्ण है।

१६- उस युग में राजस्थान में नैनूराम ब्रह्मभट्ट श्री गौरीशङ्कर ओझा, मुन्शी देवीप्रसाद व जगदीशसिंहजी गहलोत ये चार व्यक्ति नामी (Distinguished Historian) इतिहासकार थे। इन चारों ने ही लिखा है कि महर्षि को षड्यन्त्र से विष दिया गया था। श्री हरविलास सारदा ऋषि के बलिदान के समय ॉ*ॉ‹ वर्ष के थे। वह भी जाने-माने विद्वान् व इतिहासवेत्ता थे। आपने यह स्वीकार किया है महर्षि को षड्यन्त्र से विष दिया गया। यह सोलहवाँ तथ्य है जो विशेष महत्त्व रखता है।

१७- अभी-अभी एक नवीन तथ्य हमारे ध्यान में आया है। इससे पता चलता है कि महर्षि की हत्या का षड्यन्त्र जितना गम्भीर हम समझते थे, यह तो उससे भी कहीं अधिक गम्भीर था। ऋषीजी की मृत्यु का...उनको मारने का श्रेय लेनेवाले तो कई होंगे, परन्तु एक व्यक्ति तो डंके की चोट से यह लिखता है कि उनकी हलाकत (Killing Murder) का मुझे तो पहले ही ज्ञान था। उनका मारा जाना मेरे बड़प्पन का प्रमाण है। यह मेरी Prophethood-नब्बुनत का एक निशान है। यह पैगम्बर साहेब कौन थे?

यह श्रीमान् मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी थे जिनके पंथाइयों को आज मुसलमानों ने काफिर घोषित करके इस्लाम से निष्काषित कर दिया है।

मिर्जा गुलाम अहमद ने अपने ग्रन्थ हकीकत-उल-वही के अन्त में एक विस्तृत निर्देशिका दी है। इसके पृष्ठ ५१-५२ पर उन दर्जनों व्यक्तियों के नाम दिये हैं जो मिर्जा गुलाम अहमद के इलहामों के अनुसार हलाक हुए। कोई भी मिर्जा साहेब के अनुसार पूरा जीवन पाकर स्वाभाविक से नहीं मरा। इन सब लोगों की मृत्यु का पैगाम (सन्देश) मृत्यु अल्लाह मियाँ से मिर्जा साहेब को मिलता रहा। लोगों की मौकी डाक कादियानी ननी के डाकघर में प्रायः आती ही रहती थो। मरनेवालों में पादरी भी थे, मौलवी भी थे, कई हिन्दू थे। आर्यपथिक पं० लेखरामजी छुरे से मारे गये और ऋषि दयानन्द विष दिये जाने से। मिर्जा साहेब का के लाने व बुलाने में क्या योगदान रहा। यह तो आपने खुलकर इस मृत्यु नहीं बताया। आप अंग्रेज के पूर्ण भक्त थे। सरकार का पूरा संरक्षण प्राप्त था। ऋषि की हत्या में बहुत लोगों का प्रत्यक्ष व परोक्ष योगदान था। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि मिर्जा भी ऋषि को हलाक करवा के गद्‌गद् हो रहा था।

इससे पूर्व भी महर्षि दयानन्द का जीवन समाप्त करने के कई षड्यन्त्र रचे गये। कई प्रयत्न किये गये। उन्हें इससे पूर्व भी कई बार विष दिया गया। जोधपुर में दिया गया विष जानलेवा सिद्ध हुआ। उन्हें लोक- कल्याण के लिए, ईश्वर के सद्ज्ञान वेद की रक्षा व प्रचार के लिए, सदाचार के प्रसार, व्यभिचार अनाचार के प्रतिकार के लिए अपना जीवन निछावर करके वीरगति पाने का गौरव प्राप्त हुआ। विरले महापुरुषों को ही बलिदान का मुकुट धारण करने का सम्मान प्राप्त हुआ करता है। विश्व-इतिहास में गौरवपूर्ण मृत्यु का सौभाग्य प्राप्त करनेवालों में ऋषि दयानन्दजी का नाम नामी भी स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है।

ये थे उनके बलिदान के सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक तथ्य। अब उनके बलिदान को आध्यात्मिक दृष्टि से भी देखिए। इस दृष्टि से भी उनके देह-त्याग का दृश्य अत्यन्त प्रेरणाप्रद व महत्त्वपूर्ण है। इस दृश्य का कुछ वर्णन करने से पूर्व महर्षि द्वारा सत्यार्थप्रकाश के अन्त में मनुष्य की परिभाषा करते हुए लिखी गई ये पंक्तियाँ कितनी मार्मिक व शिक्षाप्रद हैं"जहाँ तक हो सके, वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यानुरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।"

ऋषिवर को देह-त्याग से पूर्व शारीरिक कष्ट तो हुआ परन्तु आपने एक बार भी मुख से 'आह' तक न की। अंग्रेज डाक्टर न्यूमैन भी आपके धीरज व चित्त की शान्ति को देखकर दङ्ग रह गया। रोम-रोम फोड़ा बनकर फूट रहा था परन्तु आपने यह सब कुछ अटल ईश्वर-विश्वास व योगबल से सहन किया। मानो अपने उपरोक्त शब्दों का अपने आचरण से भाष्य कर रहे थे। 'दारुण दुःख' मुस्कराते हुए सहा।

वे किस कोटि के योगी, ऋषि व आत्मज्ञानी थे इसका परिचय अन्त समय की कई घटनाओं से मिलता है। लाहौर से आए लाला जीवनदासजी ने पूछा, "महाराज आप कहाँ हैं?"

ऋषि ने उत्तर में कहा, "ईश्वरेच्छा में।"

आपने ईश्वरेच्छा को, उसके विधिविधान को जिस प्रसन्नता से स्वीकार किया, उसके उदाहरण बहुत कम मिलेंगे।

मृत्यु से तीन दिन पूर्व उनकी इच्छा पूछी गई तो कहा कि मसूदा ले चलो। ऋषि ने मसूदा जाने का वचन दे रखा था। भक्तों ने यह तो न कहा कि आपको इस अवस्था में ले जाना ठीक नहीं। यह कहा कि तीन दिन के पश्चात् ले चलेंगे। इस पर आपने कहा कि तीन दिन में तो पूर्ण आराम आ जावेगा। उस दिन भक्तों को कहा, "एक मास के पश्चात् आज का दिन आराम दिवस है।

अन्तिम समय किसी ने पूछा कि आपका चित्त कैसा है? इस पर ऋषिजी ने कहा, "अच्छा है, तेज और अन्धकार का भाव है।"

महर्षि के शब्द साधारण व्यक्ति की समझ में नहीं आ सकते। यह वाक्य यजुर्वेद की प्रसिद्ध ऋचा **'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्** " का ही भाव प्रकट करता है। विष के कारण शरीर को दारुण दुःख था तथापि ऋषिवर बोले, "हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, आहा! तूने अच्छी लीला की।"

ये शब्द मुख से निकले ही थे कि आत्मा भी देह को त्याग करके निकल गया। इन शब्दों का उच्चारण करने से पूर्व वेद मन्त्रों का पाठ किया, संस्कृत में प्रार्थना की, फिर भाषा में ईश्वर के गुणों का थोड़ा कथन किया। बड़े हर्षोल्लास को व्यक्त किया। देह-त्याग के समय उनकी मनःस्थिति का वर्णन हम किन शब्दों में करें।

आर्याभिविनय में एक ऋचा की विनय में ऋषि लिखते हैं, "अत्यन्त प्रार्थना से गद्‌गद् होके पुकारें।" परमेश्वर को गद्‌गद् होकर पुकारने की बात किसी और ने लिखी है क्या? दुःखी होकर तो सब प्रभु को पुकारते हैं, परन्तु दारुण दुःख भी हो फिर भी आरत की भाँति रो-रोकर नहीं, महाराज गद्‌गद् होकर पुकार उठे, "आहा तूने अच्छी लीला की! तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो।" आर्याभिविनय में जो प्रार्थना शब्दों में की गई या लिखी गई थी, देह का त्याग करते हुए उसी प्रार्थना का अनुवाद आचरण से कर दिखाया। अब सबको पता चल गया कि महर्षि दयानन्द किस कोटि के ऋषि महर्षि थे।

ऋषि के जीवन के अन्तिम दृश्य को लोगों ने पूरे ध्यान से नहीं विचारा। "प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो।" इसके मर्म को तो सबने जाना व इसकी चर्चा प्रायः की जाती है, परन्तु इस सारे दृश्य को समग्ररूप में लेने व समझने की आवश्यकता है।

ऋषि ने नाई को भी बुलवाया। क्षौर करवाया। शरीर पर तो छाले ही छाले थे। सिर और मुँह से लहू बहने लगा। सब कुछ आनन्दपूर्वक सहा। उस नाई को उस युग में पाँच रुपये दिये। पहले प्रतिदिन लोग उठाकर बिठलाते थे। अन्तिम दिन स्वयं उठकर बैठे। मानो कि सब कष्ट भाग गया है। यह क्षौर! वह तैयारी! यह उत्साह ! यह उमङ्ग! हृदय इतना तरङ्गित किसलिए? ऋषि प्रभु की गोद में जा रहे हैं। अमरपद की प्राप्ति की वेला निकट पहुँच गई। मोक्षधाम की तैयारी थी।

महर्षि ने आर्याभिविनय एक स्थान पर लिखा है-"आपकी आज्ञा का प्रणय अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके.. अंग्रेजी भाषा में इसी भाव को प्रकट करने के लिए हम "Wedded to Thy divine will" कहेंगे। सुधि पाठक आर्याभिविनय के इस वाक्य को ध्यान में रखते हुए महर्षि के अन्तिम शब्दों "प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो" पर मनन करें। जीते जी जो कुछ अक्षरों में लिखा, देह का त्याग करते हुए अपने व्यवहार में उसी का भाष्य कर दिखाया। इसी को कहेंगे करनी कथनी की एकता।

एक विचारणीय प्रश्न यह है कि महर्षि दयानन्दजी ने अपने पत्र में यह लिखा है कि हमने लोकोपकार के लिए समाधि का आनन्द छोड़ा है। आर्यसमाज में महर्षि के नाम पर शिक्षा का व्यापार करनेवालों ने आर्यसमाज को एक स्कूली कम्पनी बना दिया है। ऐसे लोगों की धर्म, कर्म व ईशोपासना में तनिक रुचि नहीं है। इन लोगों ने ऋषि के इस वाक्य का बड़ा दुरुपयोग करते हुए सन्ध्यावन्दन को कभी महत्त्व दिया ही नहीं। ऋषि ने समाधि योगसाधना कभी भी नहीं छोड़ी। अन्तिम दिन तक भी समाधिस्थ होते रहे। इस उपरोक्त वाक्य का भाव केवल इतना ही है कि ऋषि ने अखण्ड समाधि का आनन्द छोड़कर लोकहित में जान जोखिम में डाल दी।

महर्षि ने स्वयं आर्याभिविनय में लिखा है-"जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहें।"

महर्षि ने इसी सुधासिन्धु आर्याभिविनय में लिखा है-"आप हमको अपने अनन्त परमानन्द के भागी करें, उस आनन्द से हम लोगों को क्षणमात्र भी अलग न रखें।"

ईश्वर से इतना प्यार था ऋषि का। परमेश्वर के इस परम प्यारे ने लिखा है- "आप (स्वमुख)

क्रमशः पृ. ५.....

पृष्ठ ५ का शेष.....

स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्यो नत्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है।''

जिस योगेश्वर, ऋषि महर्षि के ऐसे उच्च आध्यात्मिक भाव हों, उसके एक वाक्य के आशय को ठीक-ठीक न समझकर यह शोर मचाना कि महर्षि ने समाधि का आनन्द त्याग दिया, बड़ा विषैला व भ्रामक विचार है। ऋषि के अन्तिम दिनों की दिनचर्या को पढ़िये। जोधपुर, शाहपुरा, उदयपुर, चित्तौड़ और उससे पहले भी जहाँ कहीं गये, वे सर्वत्र घण्टों समाधिस्थ होते थे। तभी तो हँसते-हँसते मृत्यु का आलिङ्गन किया। मौत उनसे डरी, दबी व भागी। वे तो मौत से न कभी पहले डरे और न महाप्रयाण के समय उन्हें शरीर के छोड़ने से किंचित्मात्र दुःख हुआ। योगियों के जप, तप और ईश्वर विश्वास की परीक्षा मृत्यु के समय ही होती है और महर्षि दयानन्द इसमें खरे उतरे। उन्होंने उस समय ईश्वर को दुःख भरे हृदय से यह न कहा कि हे प्रभो! मेरे पिता! तूने मुझे क्यों छोड़ दिया।

यहाँ एक दुःखद घटना का उल्लेख कर दें। आज से कोई २१ वर्ष पूर्व डी.ए.वी. कॉलेज के एक पूर्व प्राचार्य श्रीराम शर्मा ने एक भली प्रकार से रचे गये षड्यन्त्र के अनुसार यह विषैला प्रचार किया कि महर्षि दयानन्द को विष नहीं दिया गया था। उनका बलिदान नहीं हुआ था। इस षड्यन्त्र के पीछे अंग्रेज के गुप्तचर रायबहादुर मूलराज के कई चेले थे। होशियारपुर के आचार्य विश्वबन्धु इस शरारत के पीछे थे। विश्वबन्धुजी ने एक और प्रिंसिपल से 'वेद में माँसाहार' विषय पर एक पुस्तकलिखवाई। यह पुस्तक श्री अमरसिंह के समझाने पर उक्त प्रिंसिपल ने न छपवाई। यह एक ऐसी शरारत थी जिसका उद्देश्य मात्र आर्यजाति के इतिहास को दूषित करना था। इस टोली को महर्षि दयानन्द से एक चिढ़ थी। महर्षि दयानन्द के बलिदान के सम्बन्ध में यह भ्रामक मिथ्या प्रचार करते हुए ये पेटपंथी जातिहत्यारे यह भूल गये कि कुछ ही वर्ष पूर्व प्रिंसिपल श्रीराम शर्मा ने शोलापुर से प्रिंसिपल बहादुरमल की ऋषि दयानन्द विषयक एक पुस्तक छपवाई थी और उसमें ऋषि के विषपान से बलिदान पर विस्तार से प्रकाश डाला गया था और इस टोली के गुरु आचार्य विश्वबन्धु ने भी अपनी एक पुस्तक वेद-सन्देश में स्पष्ट लिखा है कि ऋषि का बलिदान विष दिये जाने से हुआ। पैसे के लोभ से अमरीकन प्रेरणा से रात-रात में ये लोग आर्यजाति का इतिहास बिगाड़ने लग गये। ईश्वर की कृपा से इनकी यह कुचाल विफल रही।

महर्षि दयानन्द ने अपने कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि ईशोपासना करनेवाले के लिए पर्वत के समान दुःख या दुःखरूपी पर्वत भी के समान हो जाता है। ऋषिवर विषपान के कारण इतने लम्बे समय तक रुग्ण रहे परन्तु इस महादुःख को, पीड़ा पर्वत को तृण तुल्य भी महत्त्व न दिया। हँसते-हँसते शरीर को छोड़ दिया। सत्यनिष्ठा, सत्यभाषण, निर्भीकता व आत्मबल ही तो प्रभुभक्ति का फल है। यही योगियों के योगबल की परख की कसौटी है। इसी को ध्यान में रखते हुए कलंकत्ता के दर्शनशास्त्र के एक प्रख्यात् विद्वान् डा. महेन्द्रनाथ ने महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व, कृतित्व व चरित्र का चित्र-चित्रण इन सुन्दर शब्दों में किया है-

"Strong is the epithet that can be applied in truth to Dayananda] strong in intellect] strong in adventures] strong in heart and strong in organising forces- And his teachings through life and writings can be summed up in one word STRENGTH".

अर्थात् बलवान् ही एक ऐसा विशेषण या उपाधि है जो सच्चे अर्थों में ऋषि दयानन्द के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। वे मस्तिष्क से बलशाली थे। वे साहसिक कार्यों के करने में बलवान् थे। उनका हृदय बल पौरुष से भरपूर था और वे शक्तियों को जोड़ने व सङ्गठित करने में बलवान् थे और उनके जीवन (चरित) व उनके साहित्य द्वारा उनके सिद्धान्तों, शिक्षाओं को यदि एक ही शब्द में बताना हो तो वह शब्द है शक्ति।''

महर्षि दयानन्दजी को कुछ इतिहासवेत्ता Luther OF INDIA (भारत का लूथर) कहकर पुकारा करते हैं। उपमा सर्वांश में नहीं ली जाती। लूथर महान् थे। यह सत्य है परन्तु एक तथ्य दोनों के व्यक्तित्व से बड़ा भेद दर्शाता है।

"Tuesday the 16th of November 1869 will go down to posterity as a historic day when the great shastrartha took place- It reminds one of the meetings at worms of Martin Luther and the learned representatives of the pope of Roma on this very point of Idolatory with of course one difference- At worms Martin Luther was called by warrant to clear his position before the learned judges of christendom- Here swami Dayananda had gone on his own accord to face the lion in his den and to blend him to the kness"-

अर्थात् १६ नवम्बर १८६९ मङ्गलवार का दिन, आनेवाली पीढियाँ एक ऐतिहासिक दिवस समझेंगी जबकि काशी का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था। यह हमें वर्मस में पोप के विद्वान् प्रतिनिधियों के साथ इसी मूर्तिपूजा विषय पर मार्टिन लूथर की भेंट का स्मरण करवाता है, परन्तु एक भेद के साथ। वर्मस में मार्टिन लूथर को वारण्ट जारी करके बुलवाया गया ताकि वह ईसाई जगत् के माननीय विद्वान् न्यायाधीशों के सम्मुख अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण करे और यहाँ स्वामी दयानन्द स्वेच्छा से सिंह की माँद में गये और उसके घुटने लगवाकर दिखा दिये।

ऋषि दयानन्द ने सत्य के लिए प्रत्येक सम्भव मूल्य चुकाया। लाहौर में उन्हें कहा गया कि प्रतिमा पूजन का खण्डन छोड़ो या यह बाग छोड़ो जहाँ डेरा लगा रखा है। ऋषि ने वाटिका छोड़ी दी, परन्तु सत्य का सौदा नहीं किया। ब्राह्मसमाजियों ने आश्रय दिया। फिर उन्होंने कहा कि ईश्वरीय ज्ञान वेद को छोड़ो या हमारा मन्दिर छोड़ो। ऋषि ने प्रभु की अमर वाणी वेद के लिए ब्राह्मसमाज का मन्दिर भी छोड़ दिया। डा. रहीम खाँ की कोठी में व्याख्यान देने लगे तो वहाँ इस्लाम की बुद्धिविरुद्ध बातों, अन्धविश्वासों की समीक्षा की तो किसी ने कहा, ''क्या अब यहाँ से भी निकलने का विचार है?'' कोई टिकने तो देता नहीं था। ऋषि का एक ही उत्तर था कि मैं सबका भला चाहता हूँ। जहाँ जाऊँगा, झाडू अवश्य लगाऊंगा।

आचार्य चमूपतिजी ने बहुत सुन्दर लिखा है, ''सत्य महँगा था, कोठियाँ सस्ती। या कोठियाँ महँगी थीं, सत्य सस्ता । सौदा पटने में ही नहीं आता था। स्थितप्रज्ञ साधु कैसी स्थितप्रज्ञता से इधर-उधर भटक रहा था।''

नित्यप्रति का यह भटकना क्या था? यह थी योगेश्वर दयानन्द की सत्य के लिए समाधि। इसके लिए महर्षि ने कौनसा कष्ट नहीं झेला? गिनती तो कोई करे कि कितनी बार ऋषि पर जानलेवा वार प्रहार किए गये। क्या कभी सच्चे प्रभुभक्त संन्यासी ने FIR (पुलिस में रिपोर्ट लिखवाई) अंकित करवाई। एक भी तो दृष्टान्त कोई देवे? और अन्त में सद्धर्म के लिए, अनाचार, अन्याय, अन्ध-विश्वास, अज्ञान व दुराचार के उन्मूलन के लिए प्यारी जान भी वार दी।

जब कि बुझने लगा शहर अजमेर में,
देह दीपक दयानन्द ऋषिराज का।
पूर्ण इच्छा प्रभो! हो तुम्हारी यही,
बोलकर वाक्य वे मुस्कराने लगे।।
-कविरत्न 'प्रकाश'

सच्च तो बता तू कौन था?
पीकर फना के जाम को।
दीपावली की शाम को।।
देह का दिया बुझा गया, सच्च
तो बता तू कौन था?
-'सोजन' कवि

ईश्वर के गुण

-सुभाषिनी आर्या

(१) **अजन्माः-** ईश्वर को वेद में अजन्मा कहा गया है।यथा ऋग्वेद में कहा है कि-

अजो न क्षां दाधारं पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः।

अर्थात् 'वह अजन्मा परमेश्वर अपने अबाधित विचारों से समस्त पृथिवी आदि को धारण करता है।'

इसी प्रकार यजुर्वेद में कहा है कि ईश्वर कभी भी नस-नाड़ियों के बन्धन में नहीं आता अर्थात् अजन्मा है।

ईश्वर को अजन्मा मानने में सबसे अधिक प्रबल युक्ति यह है कि जन्म के साथ अनेक ऐसी बातें जुड़ी हुई हैं जो ईश्वर के गुण,कर्म,स्वभाव के विपरित है।जैसे जो जन्मता है वह मृत्यु को भी अवश्य प्राप्त होता है तथा जन्म के साथ ही शरीर आदि में होने वाले दुःखों को सहना पड़ता है जिससे ईश्वर को आनन्दस्वरुप नहीं माना जा सकेगा और जो इस प्रकार से जन्म-मरण के चक्र में पड़ने वाला होगा उसे न तो सर्वव्यापक ही कहा जा सकता है और न सर्वशक्तिमान।

और वेदों में वर्णित ईश्वर के स्वरुप में उसके एक गुण का दूसरे गुण से ऐसा मेल है कि एक गुण से दूसरा गुण स्वतः ध्वनित होने लगता है यथा-सच्चिदानन्द होने से वह निराकार है क्योंकि आकार का तात्पर्य है सावयव होना और सावयव कभी भी सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता क्योंकि अवयवों का संयोग बिना दूसरे के किए नहीं हो सकता।अतः ईश्वर निराकार है और निराकार होने से वह सर्वशक्तिमान है। सर्वशक्तिमान होने से वह न्यायकारी है और न्यायकारी होने से दयालु तथा अजन्मा है।क्योंकि जो जन्म-मरण वाला हो वह सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता न आनन्द स्वरुप ही होता।

(२) ईश्वर अनन्त हैः- अजन्मा होने से ईश्वर अनन्त है क्योंकि जन्म मृत्यु की अपेक्षा रखता है,मृत्यु अर्थात् अन्त और जन्म एक दूसरे की पूर्वापर स्थितियाँ हैं अतः ईश्वर अनन्त अर्थात् अन्त से रहित है।वेद में ईश्वर को अनन्त बताते हुए कहा है-

अनन्त विततं पुरुत्रानन्तम् अनन्तवच्चा समन्ते।
अर्थात् 'अनन्त ईश्वर सर्वत्र फैला हुआ है।'

(३) ईश्वर निर्विकार हैः- अजन्मादि गुणों की पुष्टि के लिए वेद में ईश्वर को निर्विकार कहा है क्योंकि विकारादि जन्म की अपेक्षा रखते हैं और ईश्वर को 'अज' अर्थात् अजन्मा कहा है।अतः वह निर्विकार अर्थात् शुद्धस्वरुप है।वेद की इसी मान्यता के आधार पर महर्षि पातंजलि ने योग दर्शन में लिखा है-

'क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविषेश ईश्वरः'

अर्थात् जो अविद्यादि क्लेश,कुशल-अकुशल,इष्ट-अनिष्ट और मिश्रफल दायक कर्मो की वासना से रहित है वह सब जीवों से विषेश ईश्वर कहाता है।

(४) ईश्वर अनादि हैः- ईश्वर का कोई आदि नहीं है इसलिए वह अनादि है क्योंकि आदि के साथ अन्त भी लगा होता है अर्थात् जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी अवश्य होती है और जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी अवश्य होता है।इस विषय में यह विचार करना भी आवश्यक है कि आदि और अन्त क्या है?वास्तव में किसी तत्व के प्रकट होने को उत्पन्न होना कहा जाता है अर्थात् उसका अप्रकट हो जाना अन्त कहलाता है अर्थात् जब परमाणुओं के विशेष संयोग से कोई विशिष्ट वस्तु प्रकट होती है तब उस वस्तु की उत्पत्ति मानी जाती है और परमाणुओं के विखण्डित हो जाने को ही उस वस्तु का नष्ट होना कहा जाता है।

सामवेद में ईश्वर के अनादि स्वरुप को निरुपित करते हुए कहा है-

''जजुषा सनादसि'' अर्थात् ईश्वर सनातन(अनादि) है।

(५) ईश्वर अनुपम हैः- वेद के अनेक मन्त्रों में ईश्वर को अनुपम कहा है अर्थात् उसके समान शक्ति सम्पन्न अन्य कोई नहीं इसलिए वह अनुपम है। जैसा कि सामवेद में कहा है कि-

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।न क्येवं यथा त्वम् ।।

अर्थात् ईश्वर के समान न ही तो कोई श्रेष्ठ है और न ही उससे ज्येष्ठ है।अथर्ववेद में कहा है 'तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे' अर्थात् संसार में कुछ भी ऐसा नहीं है जिससे ईश्वर की उपमा दी जा सके इसलिए वह अनुपम है।

(६) सर्वाधारः- वेद की चारों मन्त्र संहिताओं में ईश्वर को समस्त चराचर जगत एवं जीवों का आधार कहा गया है अर्थात् समस्त पृथ्वी आदि लोक-लोकान्तर उसी के आधार पर टिके हैं इसलिए वह सर्वाधार है।परमात्मा की शक्ति का वर्णन करता हुआ उपनिषद कहता है-''सूर्य,चन्द्रमा,तारे,बिजली और अग्नि ये सब ईश्वर में प्रकाश नहीं कर सकते किन्तु इन सबको प्रकाशित करने वाला एक वही ईश्वर है।''

ऋग्वेद में कहा है- सदाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम। अर्थात् ईश्वर पृथ्वी और द्युलोक दोनों का आधार है,वही सबका आधार है।

प्रश्नः-जब ईश्वर सबका आधार है तब ईश्वर का आधार क्या है?

उत्तरः-ईश्वर सबका आधार होने के साथ-साथ स्वयं अपना भी आधार है क्योंकि आधार उसको कहा जाता है जो सर्वशक्तिमान है इसलिए वह सबका आधार है और उसका अन्य कोई आधार नहीं हो सकता क्योंकि किसी का आधार उससे अधिक शक्तिशाली ही होता है, लोक में भी हम देखते हैं कि प्रत्येक निर्बल अपने से सबल के आश्रय में ही रहता है और कोई भी अपने से निर्बल के आश्रय में नहीं रहता इसी प्रकार क्योंकि ईश्वर से अधिक शक्ति सम्पन्न अन्य जीवादि कोई नहीं इसलिए उसका कोई आधार नहीं।

उदाहरणार्थ-एक राज्य में सब राजा के आश्रित होते हैं किन्तु राजा किसी के आश्रित नहीं होता इसी प्रकार ईश्वर भी सर्वाधार है। आईये वेद विदित ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना सब मिलकर करें।

पृष्ठ १ का शेष.....

● स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

किसी एक धुन के सिवा मनुष्य कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। धुन भी इतनी कि दुनिया उसे पागल कहे। पं. गुरुदत्त के अन्दर पागलपन तक पहुँची हुई धुन विद्यमान थी। उसे योग और वेद की धुन थी। जब गुरुदत्तजी स्कूल की आठवीं जमात में पढ़ते थे, तभी से उन्हें शौक था कि जिसके बारे में योगी होने की चर्चा सुनी, उसके पास जा पहुँचे। प्राणायाम का अभ्यास आपने बचपन से ही आरम्भ कर दिया था। इसी उम्र में एक बार बालक को एक नासारन्ध्र को बन्द करके साँस उतारते-चढ़ाते देखकर माता बहुत नाराज हुई थी। उसे स्वभावसिद्ध मातृस्नेह ने बतला दिया कि अगर लड़का इसी रास्ते पर चलता गया तो फकीर बनकर रहेगा।

अजमेर में योगी महर्षि दयानन्द, की मृत्यु को देखकर योग सीखने की इच्छा और भी अधिक भड़क उठी। लाहौर पहुँचकर पण्डितजी ने योगदर्शन का स्वाध्याय आरम्भ कर दिया। आप अपने जीवन घटनाओं को लेखबद्ध करने और निरन्तर उन्नति करने के लिए डायरी लिखा करते थे। उस डायरी के बहुत-से भाग कई सज्जनों के पास विद्यमान थे। उनके पृष्ठों से चलता है पता चलता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, पण्डितजी की योगसाधना की इच्छा प्रबल होती गई। आप प्रतिदिन थोड़ा-बहुत प्राणायाम करने लगे। आपकी योग की धुन इतनी प्रबल हो गई कि कुछ समय तक गवर्नमैण्ट कॉलेज में साइन्स के सीनियर प्रोफेसर रहकर आपने वह नौकरी छोड़ दी। आपके मित्रों ने बहुत आग्रह किया कि आप नौकरी न छोड़िए। केवल दो घण्टे पढ़ाना पड़ता है, उससे कोई हानि नहीं। आपने उत्तर दिया कि प्रातःकाल के समय में योगाभ्यास करना चाहता हूँ, उस समय को मैं कालेज के अर्पण नहीं कर सकता। यह पहला ही अवसर था कि पंजाब का एक हिन्दुस्तानी ग्रेजुएट गवर्नमेंट कालेज में साइन्स का प्रोफेसर हुआ था। कालेज के अधिकारियों और हितैषियों ने बहुत समझाया, परन्तु योग के दीवाने ने एक न सुनी, एक न मानी।

पं. गुरुदत्तजी को दूसरी धुन थी वेदों का अर्थ समझने की। वेदों पर आपको असीम श्रद्धा थी। वेदभाष्य का आप निरन्तर अनुशीलन करते थे। जब अर्थ समझने में कठिनता प्रतीत होने लगी तब अष्टाध्यायी और निरुक्त का अध्ययन आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे अष्टाध्यायी का स्वाध्याय पण्डितजी के लिए सबसे प्रथम कर्तव्य बन गया, क्योंकि आप उसे वेद तक पहुँचने का द्वार समझते थे। आपका शौक उस नौजवान-समूह में भी प्रतिबिम्बित होने लगा, जो आपके पास रहा करता था। सुनते हैं कि मा. दुर्गादासजी, ला. जीवनदासजी, मा. आत्मारामजी पं. रामभजदत्तजी और लाला मुन्शीरामजी की बगल में उन दिनों अष्टाध्यायी दिखाई देती थी।

अष्टाध्यायी, निरुक्त और वेद का स्वाध्याय निरन्तर चल रहा। यदि उसमें नागा हो जाती तो पण्डितजी को अत्यन्त दुःख होता। वह दुःख डायरी के पृष्ठों में प्रतिबिम्बित है। आपकी प्रखर बुद्धि के सामने दुरूह-से-दुरूह विषय सरल हो जाते थे, और बड़े-बड़े पण्डितों को आश्चर्यित कर देते थे। श्री स्वामी अच्युतानन्दजी अद्वैतवादी संन्यासी थे। पं. गुरुदत्तजी आपके पास उपनिषदें पढ़ने आ जाया करते थे। विद्यार्थी की प्रखर बुद्धि का स्वामीजी पर यह प्रभाव पड़ा कि शीघ्र ही शिष्य के अनुयायी हो गये । स्वामीजी पं. गुरुदत्तजी को पढ़ाते-पढ़ाते स्वयं द्वैतवादी बन गये और आर्यसमाज के समर्थकों में शामिल हो गये देहरादून के स्वामी महानन्दजी प्रसिद्ध दार्शनिक थे। आपको भी पं. गुरुदत्तजी के अध्यापक बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सच्छिष्य के प्रभाव से आप भी आर्यसमाजी बन गये।

स्रोत : विषवृक्ष, पृ. ३८-४०,

निरभिमानी पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी

२७ नवंबर १८८७ में आर्यसमाज लाहौर का दशम वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा था। पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी के दो अद्भुत प्रभावशाली भाषण वहाँ हुए।

लाला जीवनदास उस भाषण से इतना प्रभावित हुए की सभास्थल पर ही अनायास उनके मुख्य से निकल पड़ा , '' गुरुदत्त जी ! आज तो आपने ऋषि दयानन्द से भी अधिक योग्यता प्रदर्शित की है।''

परन्तु निरभिमानी ऋषिभक्त विद्यार्थी ने झटपट उत्तर दिया -''यह सर्वथा असत्य है। पाश्चात्य विज्ञान जहाँ समाप्त होता है , वैदिक विज्ञान वहाँ से प्रारम्भ होता है और ऋषि के मुकाबले मैं तो सौंवां भाग भी विज्ञान नहीं जानता।''

महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने भी यह भाषण सुना था। वे लिखते है - ''मुझे सुधि न रही कि मैं पृथ्वी पर हूँ।''

पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी का संस्कृत से अद्वितीय लगाव युवाओ के प्रेरणास्रोत,

एक दिन गुरुदत्त अपने सहपाठी तथा चेतनानंद के घर गया। वहाँ मनुस्मृति रखी थी। उसे पाँव से ठुकराकर बोला ,''चेतनानंद ! किस गली-सड़ी एवं मातृभाषा में लिखी पुस्तक पढ़ते हो? ''

ईश्वर की लीला देखिए। थोड़े ही दिनों पश्चात स्वयं गुरुदत्त पर संस्कृत का जादू हो गया। उसके ह्रदय में संस्कृत पढ़ने की लालसा पैदा हो गई। श्रेय गया स्कूल में इतिहास पढ़ाने वाले उस अध्यापक को जो इतिहास पढ़ाते समय अनेक अंग्रेजी शब्दों का मूल संस्कृत में बताया करता था।

उसके पश्चात संस्कृत की ऐसी लगन लगी कि संस्कृताध्यापक भी उनकी शंकाओं का समाधान नहीं कर पाते थे और एक दिन तो गुरुदत्त को झिड़क कर कक्षा से बाहर ही निकाल दिया।

अब जल की धारा अपना मार्ग स्वयं बनाने निकल पड़ी।

सर्वप्रथम डव बेलनटाइन कृत ''Easy Lessons in Sanskrit Grammar'' पढ़ा।

संयोगवश तभी दयानन्द सरस्वती की ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका हाथ लग गई। उसका संस्कृत भाग शब्दकोष की सहायता से पढ़ लिया। फिर क्या था ! संस्कृत पढ़ने की रूचि बढ़ती चली गई ।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का पारायण कर आर्यसमाज मुलतान के अधिकारियों से जा कहा - ''मेरी अष्टाध्यायी तथा वेदभाष्य पढ़ने का प्रबंध कर दो अन्यथा मैं जनता में प्रसिद्ध कर दूंगा कि तुम्हारे एक भी व्यक्ति में संस्कृत पढ़ाने की योग्यता नहीं है। तुम केवल संस्कृत का ढोल पीटते हो। '' विचित्र बालक है। किस चपलता से संस्कृत अध्ययन का प्रबंध करवा रहा है ?

आर्यसमाजियों में भी खूब उत्साह था। तत्काल पंडित अक्षयानंद को मुलतान बुलाया गया।

भक्त रैमलदास और गुरुदत्त आदि ने संस्कृत पढ़नी आरम्भ कर दी।

गुरुदत्त को अष्टाध्यायी पढ़ने की इतनी रूचि थी कि एक बार पूर्णचन्द्र स्टेशन मास्टर बहावलपुर के निमंत्रण पर पंडित अक्षयानंद वहां चले गए तो वह किराया खर्च कर पढ़ने के लिए बहावलपुर ही पहुँच गया परन्तु इतिहास की फिर पुनरावृत्ति हुई। पंडित अक्षयानंद भी उसे पढ़ाने में असमर्थ सिद्ध हुए।

गुरुदत्त कोई साधारण विद्यार्थी तो था नहीं। उसकी संतुष्टि न हो सकी। डेढ़ माह में डेढ़ अध्याय अष्टाध्यायी का पढ़ने के पश्चात अक्षयानंद से पढ़ना छोड़ दिया।

शेष अष्टाध्यायी सभवतः ऋषि दयानन्द के वेदांगप्रकाश की सहायता से स्वयं पढ़ी। सम्पूर्ण अष्टाध्यायी नौ मास में पढ़ लिया। कालेज में प्रविष्ट होने से पूर्व अष्टाध्यायी पर उनका अच्छा अधिकार था।

-सन्दर्भ : डा. रामप्रकाश जी की पुस्तक -''पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी''

अद्भुत प्रतिभा के धनी पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, गुरु को भी बना लिया था शिष्य-वैदिक संस्कृति की रक्षा के लिए पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी जी ने आर्यसमाज में विद्वानों की जरूरत समझी। अतः गुरुदत्त विद्यार्थी जी ने स्वामी अच्युतानन्द को (जो नवीन वेदांती थे) आर्यसमाजी (आर्य सन्यासी) बनाने के लिए ठान लिया। इसके लिए गुरुदत्त जी उनके शिष्य बनकर उनके पास जाया करते थे। फिर क्या हुआ। समय बदला गुरु शिष्य बन गया और शिष्य गुरु।

स्वामी अच्युतानन्द कहा करते थे,"पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी का सच्चा प्रेम,अथाह योग्यता और अपूर्ण गुण हमें आर्यसमाज में खींच लाया।"

जिस हठीले अच्युतानन्द ने ऋषि दयानन्द से शास्त्रार्थ समर में पराजित होकर भी पराजय नहीं मानी थी,आज वही उसके शिष्य के चरणों में अपने अस्त्र-शास्त्र फेंक चुका है।आज वह उसी ऋषि का भक्त है-उसी के प्रति उसे श्रद्धा हो गयी है।

श्रद्धा भी इतनी कि जब कई वर्ष पीछे पण्डित चमूपति ने उनसे पूछा, "स्वामी जी नवीन वेदान्त विषय पर आपका शास्त्रार्थ महर्षि दयानन्द से हुआ था,इसका कोई वृत्तान्त सुनाइए।"

तो गर्व से बोले-"मैं मण्डली सहित मण्डप में पहुँचा।"

चमूपति जी पूछ बैठे - ''और और मेरा ऋषि?''

बस, एकदम बाँध टूट गया, स्वामी जी की आँखों से आँसू छलक आये।ह्रदय की श्रद्धा आँखों का पानी बनकर बह निकली, गला रूँध गया और भर्राई हुई आवाज में बोले-"ऋषि ! ऋषि ! ! वह ऋषि (दयानंद) तो केवल अपने प्रभु के साथ पधारे थे।" इतना कहते ही बिलख -बिलखकर रोने लगे।ऋषि के प्रति उनमें इतनी श्रद्धा पैदा कर दी थी गुरुदत्त ने।

स्रोत-

पुस्तक-'पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी'

लेखक-डा. राम प्रकाश

पण्डित गुरुदत्त को योग में काफी रूचि थी। किसी योगी महात्मा के मुलतान आने का पता चला तो अपने चाचा के साथ महात्मा जी की सेवा में पहुँच गये और निम्नलिखित वार्तालाप हुआ उनसे ----

गुरुदत्त - महाराज ! योग सीखने का सर्वोत्तम विधि कौनसी है? जो महर्षि पतंजलि ने अपनें योग सूत्रों में वर्णन की है , वह या और कोई ?

साधु-पतंजलि की विधि ही ठीक है, अन्य विधियाँ कपोल-कल्पित हैं।

गुरुदत्त - क्या आप स्वामी दयानन्द के विषय में कुछ जानते हैं ?

साधु - हाँ , हम जंगलों में इकट्ठे रहे हैं। एक बार हम एक स्थान पर भागवत पुराण बांचने वाले एक पण्डित के पास कथा सुनने जाते रहे। स्वामी दयानंद जी पुराणों की बातें सुनकर दुखी हो जाया करते थे।

गुरुदत्त --क्या वेद समस्त विद्याओं का भण्डार है ?

साधु - हाँ

गुरुदत्त -क्या सैन्य संचालन और व्यूह रचना के नियम भी वेदों में हैं।

साधु - हाँ , हैं। ये सिद्धांत मैं स्वयं भी जानता हूँ यदि कोई छह मनुष्य मेरे साथ वन में चले तो मैं उन्हें महाभारत तथा रामायण के समय की शैली पर शिक्षा दे सकता हूँ।

गुरुदत्त ने महात्मा जी से बुद्धि तीव्र बनाने का ढंग पूछा। इस पर साधु ने उसे एक नुस्खा लिखा दिया जिसमें बहुत सी औषधियाँ वे ही थी जो संस्कारविधि में लिखी थी।

डां० राम प्रकाश द्वारा लिखी पुस्तक -''पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी''

ईंट-पत्थर किसी का स्मारक नहीं बन सकते।

पंडित गुरूदत्त विद्यार्थी अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि-

''ईंट-पत्थर पर किसी ऋषि का नाम खुदवा देने से ऋषि का स्मारक नहीं बन सकता। प्रत्युत यदि ऋषि का स्मारक स्थापित करना चाहते हो तो उन सिद्धांतों का प्रचार करके दिखाओ जिन सिद्धांतों का प्रहार वे ऋषि करते रहे हैं। स्वामी दयानन्द का स्मारक यही है कि वेद के सिद्धांतों का समाज में प्रचार प्रसार हो जाये।''

सन्दर्भ- पंडित लेखराम आर्यपथिक संगृहीत महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र। पृष्ठ ८६१,संस्करण २०४६

नोट- इस लेख के लेखन में आर्य विद्वान् श्री भावेश मेरजा एवं भ्राता अनिल विभ्रांत आर्य का मुझे सहयोग प्राप्त हुआ हैं।

पृष्ठ....३ का शेष

मनुस्मृति के श्लोक को उद्धृत करते हैं।

"न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् स साधुभिर्बहिष्कार्यं सर्वस्माद् द्विजकर्मणः"

अर्थात् जो ये दोनों काम परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र सायं और प्रातः न करें उसको सज्जन लोग सब द्विजों के कार्यों से बाहर निकाल देवे अर्थात् उसे शूद्रवत् समझे।

प्रातः सायं में से कौन सा समय उपासना के लिए उचित माना जाय, इस सम्बन्ध में स्वामी जी के ग्रन्थों से जो संकेत प्राप्त होते हैं उनके अनुसार-

"ब्रह्म का उपासक रात्रि और दिवस के सन्धि समय में नित्य उपासना करें।... सन्ध्योपासना करने के पश्चात् अग्निहोत्र का समय है।"

"सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र का भी समय है"

दिन और रात्रि के सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्नि होत्र अवश्य करना चाहिये ।

"जैसे प्रातः सायं दोनों सन्धि वेलाओं में सन्ध्योपासना करे, इसी प्रकार दोनों स्त्री-पुरुष अग्निहोत्र भी दोनों समय में नित्य किया करें।"

चार प्रकार के द्रव्य-

अग्निहोत्र में चार प्रकार के द्रव्यों का होम करना होता है।

१. सुगन्ध-गुणयुक्त-केशर कस्तूरी, अगर तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि।

२. पुष्टिकारक-घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द आदि।

३. मिष्ट-शक्कर सहत (शहद), छुहारे, दाख (किशमिश) आदि।

४. रोगनाशक-सोम लता अर्थात् गिलोय आदि ओषधियाँ।

यज्ञ समिधा-

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाणे छोटी-बड़ी करवा लें। परन्तु ये समिधा कीड़ा लगी, मलिन- देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों।

अग्निहोत्र में प्रयोग की जाने वाली समिधा के कुछ गुण निम्नलिखित हैं-

लकड़ी (समिधा) सुविधापूर्वक जलने वाली हो। छाल युक्त लकड़ी अधिक गुणकारी होती है। आह्निक सूत्रावली में त्वचा रहित समिधा का निषेध है "न विनिर्मुक्तत्वचा चैव'

२. लकड़ी मलिन, दूषित एवं कीड़ा लगी न हो।

३. जलने पर लकड़ी धुआँ और दुर्गन्ध न दे।

४. लकड़ी जलकर राख हो जानी चाहिये, कोयला बनाने वाली लकड़ी उपयोगी नहीं होती। वैसे तो कोयले में लकड़ी की अपेक्षा कार्बन की मात्रा अधिक होती है। फिर भी हवन में अग्नि प्रज्वलित रखने के लिये कोयले का प्रयोग नहीं किया जाता, क्योंकि यह जलते समय कार्बन मोनोक्साईड (Co) नामक जहरीली गैस उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त लकड़ी बीच में कटी होनी चाहिये क्योंकि उससे उसका Surface area बढ़ जाता है और जितना Surface बड़ा होगा उतनी ही ज्वलन क्रिया अधिक होगी।

लकड़ियों में Volatile oil नहीं होने चाहिये जैसे कि चील देवदार जिनमें Resin होता है।

लकड़ियाँ घुन लगी न हों क्योंकि घुन भी तो Organic पदार्थ है जिनके जलने से दुर्गन्ध भी पैदा होगी और कीट आदि भी मारे जायेंगे। जो कि यज्ञ की भावना नहीं है, उसे तो 'अध्वर' कहा गया है अर्थात् हिंसा रहित कर्म। कुछ लकड़ियों के ओषधि युक्त गुण वर्णित है।

१. ढाक (पलाश) Butea frondosa अग्नि दीपक और वीर्य वर्द्धक है। गुदा के रोग, संग्रहणी और कृमिनाशक है। ढाक के बीजों को शहद में मिलाकर आँत के कीड़े निकालने की ओषधि बनाई जाती है।

२. पीपल (पिप्पल) Ficus religiosa यह पवित्र समिधा मानी जाती है,

यह दाह, कफ, पित्त, विष तथा रक्तविकार नाशक है। इसके बीजों का चूर्ण श्वास रोग में लाभप्रद है।

३. बड़ (वट) Ficus bengalensis कफ पित्त वमन एवं ज्वर में लाभप्रद है। कान्ति बढ़ाता है। इसका दूध बलवर्द्धक है। इसके दूध को बताशे में रखकर सेवन करने से प्रमेह रोग दूर होता है।

४. आम (आम्र) Mangifera indica यह कफ पित्त रक्तविकार तथा प्रमेह नाशक है। इसके पत्तों का धुआँ कुक्कुर खाँसी को नष्ट करता है।

५. चन्दन (चन्दन) Santalam album सर्वोत्तम चन्दन देखने में सफेद, काटने में लाल, पीसने में पीला और स्वाद में कड़वा होता है। यह कफ, तृषा, पित्त रुधिर विकार और दाहनाशक है। सफेद चन्दन का तेल सुजाक (आतशक) में लाभदायक है।

६. गूलर (उदुम्बर, हेमदुग्धक) Ficus glomerata यह कफ, पित्त और रक्तविकार को ठीक करता है। हड्डी को जोड़ने वाला है।

७. अशोक (अशोक) Saraca indica यह शीतल, कान्तिवर्द्धक, मलरोधक, हड्डी जोड़ने वाला और कृमिनाशक है। शूल, उदर रोग, पित्त, अपच, विष औररुधिर विकारों को दूर करता है। बवासीर में भी यह लाभदायक है।

यज्ञकुण्ड का परिमाण-

उसके (अग्निहोत्र के) लिये सोना, चाँदी, ताम्बा, लोहा वा मिट्टी का कुण्ड बनवा लेना चाहिये, जिसका परिमाण सोलह अंगुल चौड़ा, सौलह अंगुल गहरा और उसका तला चार अंगुल लम्बा चौड़ा रहे ।

"वेदी-अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो उसकी चतुर्थांश नीचे चौड़ी रहे।

इसी प्रकार स्वामी जी ने बड़े यज्ञों की वेदी के लिये आहुतियों के अनुसार परिमाण दिये हैं। निष्कर्ष यह है कि आवश्यकता और सुविधा के अनुसार ऊपर जितना परिमाण चारों और रखना हो उतना ही गहरा रखे और नीचे चारों ओर उसका चतुर्थांश हो ।

यज्ञकुण्ड का यह आकार पूर्णतया वैज्ञानिक है। ऐसे कुण्ड में कम लकड़ी जलाने पर भी अधिक गर्मी पैदा होती है। यज्ञकुण्ड की बनावट और समिधाओं के चयन की विधि हवन के लिये वांछित गर्मी पैदा करने में बड़ी सहायक होती है। यज्ञकुण्ड के नीचे के भाग में लगभग ३०० C तापांश होता है उपर का तापांश लगभग १३०० C तक पहुंच जाता है। अग्नि धीमी पड़ने पर यह तापांश २५० C से ६०० C तक रह जाता है और हवन के लिये यह मात्रा भी पर्याप्त है।

डीएवी कॉलेज, लखनऊ में अखिल भारतीय आर्य साहित्यकार सम्मेलन।

महर्षि दयानन्द के द्विशताब्दिवर्ष एवं डीएवी कॉलेज, लखनऊ के शताब्दिवर्ष में 'आर्य लेखक परिषद्' तथा डीएवी कॉलेज, लखनऊ के संयुक्त तत्वावधान में १५ एवं १६ अप्रैल, २०२३ (शनि-रविवार) को डीएवी कॉलेज, लखनऊ के 'पं० भृगुदत्त तिवारी सभागार' में अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन का आयोजन किया गया।

सम्मेलन में अग्रांकित विषयों पर विचार प्रस्तुत किये गये:-(१) महर्षि दयानन्द का सार्वभौम वैदिक दर्शन, (२) वैदिक संस्कारों की उपादेयता एवं प्रासंगिकता (३) वर्तमान हिन्दी काव्य में गीत, छन्द एवं गजलय (४) देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता (५) साहित्यकारों एवं पत्रकारों का सामाजिक दायित्व (६) लेखन में वैदिक सन्देशों की आवश्यकता (७) कवि सम्मेलन। शनिवार का अन्तिम सत्र कवि-सम्मेलन के रूप में हुआ, जो रात्रि २ बजे तक चला।

उ०प्र० के अतिरिक्त जम्मू-काश्मीर, पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों से आकर ६५ साहित्यकार सम्मिलित हुए, जिनमें कुछ नाम निम्नलिखित हैं:-

१. पद्मश्री डॉ० विद्याविन्दु सिंह, २. आचार्य अखिलेश 'आर्येन्दु',
३. श्री अनंगपाल सिंह भदौरिया, ४. डॉ० परमानन्द तिवारी,
५. श्री अरुण कुमार पासवान, ६. श्री वेद प्रकाश इंजीनियर,
७. डॉ० अरविन्द श्रीवास्तव 'असीम' ८. श्री रवीन्द्र भूषण,
९. डॉ० रसिक किशोर सिंह 'नीरज', १०. आचार्य सन्तोष कु० वेदालंकार
११. श्री प्रत्यूष रत्न पाण्डेय, १२. स्वामी वेदामृतानन्द सरस्वती।

डीएवी कॉलेज के प्रबन्धक पं० मनमोहन तिवारी ने सम्मान-समारोह की अध्यक्षता की और अतिथियों के भोजन-आवास का प्रबन्ध कराया। उन्हें वेद-विद्वानों द्वारा 'अतिथिदेवो भव' सम्मान प्रदान किया गया। अन्य साहित्यकारों को 'आर्यावर्तृत साहित्य साधना सम्मान' तथा 'साहित्य प्रज्ञा सम्मान' प्रदान किये गये।

प्रो० सत्यकाम आर्य द्वारा कुशल मंच-संचालन किया गया। श्री गिरजेश कुमार ने मधुर भजन प्रस्तुत किये। कर्नल अनिल आहूजा ने गुरुकुल-शिक्षा हेतु आह्वान किया। स्वामी वेदामृतानन्द जी ने अतिथियों को सत्यार्थ-प्रकाश की प्रतियाँ भेंट कीं। डॉ. रूपचन्द्र 'दीपक' मुख्य संयोजक रहे।

इच्छा और आशा

-स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

"आपके जीवन में जितने भी दुख आते हैं, उनमें से बहुत बड़ा भाग आपकी इच्छाओं और आशाओं के पूरा न होने के कारण से होता है। और इसके सबसे बड़े जिम्मेदार आप स्वयं हैं।"

"इच्छाएं' वे कहलाती हैं, जो आप अपने मन में स्वयं ही कामनाएं करते रहते हैं। जैसे "मुझे ऐसी गाड़ी चाहिए। ऐसा बंगला चाहिए। ऐसी नौकरी चाहिए। ऐसा व्यापार चाहिए। इतना धन चाहिए, इतना सम्मान चाहिए, इतने नौकर चाकर चाहिएं आदि आदि। इसमें आप अकेले होते हैं। अर्थात 'स्वयं ही' अपने मन में इच्छाएं करते रहते हैं।"

परंतु "आशा, उम्मीद या एक्सपेक्टेशन' उसे कहते हैं, जब आप अपनी इच्छा अनुसार 'दूसरों से' कुछ सहयोग प्राप्त करने की कामना करते हैं।" "जैसे मेरी पत्नी को मेरे लिए ऐसा काम करना चाहिए। मेरे भाई को मेरे लिए ऐसा करना चाहिए। मेरे माता पिता को मेरे लिए इतनी संपत्ति देनी चाहिए। मेरे नौकर को मेरा काम अच्छी तरह से करना चाहिए इत्यादि। इसमें आप अकेले नहीं होते, बल्कि दूसरे लोगों को भी अपने साथ जोड़ लेते हैं।"

"जब आपकी ये इच्छाएं और आशाएं पूरी नहीं हो पातीं, तब आपको बहुत क्रोध आता है, और बहुत दुख होता है।" "यदि आप थोड़ा गंभीरता से विचार करें, तो अपनी इच्छाओं और आशाओं पर नियंत्रण करके आप बहुत सीमा तक अपने दुखों को कम कर सकते हैं, और सुखी हो सकते हैं।"

अपनी इच्छाओं को वहीं तक सीमित रखें, जहां तक उनको पूरा करने का सामर्थ्य आप में हो। "जिस इच्छा को पूरा करना आप के सामर्थ्य से बाहर हो, उस इच्छा को आप स्वयं ही छोड़ दें, तभी आप दुख से बच पाएंगे और सुखी हो पाएंगे। यदि उस इच्छा को नहीं छोड़ेंगे, तो वह पूरी नहीं होगी, और आपको सदा दुख देती रहेगी।"

दूसरी बात- जो आप अन्य लोगों से आशाएं या एक्सपेक्टेशन्स रखते हैं, उस विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए, कि "दूसरे लोग भी १००: आपकी इच्छाएं और आशाएं पूरी नहीं कर सकते।" इस बात को समझने के लिए, इस बात को आप पहले अपने ऊपर लागू कर के देखिए। "क्या आप १००: किसी दूसरे मनुष्य की इच्छा अनुसार जी सकते हैं? १००: उसकी आशाओं या एक्सपेक्टेशन्स को पूरा कर सकते हैं?" आपका उत्तर होगा - "नहीं।"

अब यही बात आप दूसरों पर भी लागू कीजिए। "जब 'आप' १००: किसी दूसरे व्यक्ति की इच्छा के अनुसार नहीं जी सकते, उसकी आशाओं को पूरा नहीं कर सकते, तो 'दूसरे लोग' भी १००: आपकी इच्छाओं और आशाओं को पूरा नहीं कर पाएंगे।" और फिर भी यदि आप उनसे ऐसी आशा रखते हैं, कि "वे १००: आपकी बात मानें। तो यह आपकी ही भूल है। ंपया अपनी भूल का सुधार करें। "अपनी इच्छाओं और आशाओं को कम करें।" तभी आप सुखपूर्वक जीवन जी पाएंगे। और ऐसा करना आपके ही अधिकार में है। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे, तो जीवन भर दुखी रहेंगे। तब आपके दुखों को कोई भी दूर नहीं कर पाएगा।"

सारी बात का सार यह हुआ, कि "अपनी इच्छाओं और आशाओं को यथाशक्ति कम करें। अपने वास्तविक सामर्थ्य को पहचानें तथा उसी के अनुसार अपने मन में इच्छाएं उत्पन्न करें, और पूर्ण पुरुषार्थ करके उन्हें पूरा करने का प्रयास करें। दूसरे लोग भी जितना सहयोग दें, उतना उनका धन्यवाद करें, उनका आभार मानें। किसी से शिकायत न करें। यही सुख से जीवन जीने का रहस्य है।"

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र २७ अप्रैल, २०२३ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०६४१२६७८५७१, मंत्री-०६४१५३६५५७६, सम्पादक-६४५१८८१६७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

.....

.....

ओ३म् जप से एकाग्रता और विघ्नों का नाश

'योगदर्शन' में तो अतिशीघ्र मन की एकाग्रता प्राप्त करने का सरल सीधा साधन ओ३म् का जप और ओ३म् के अर्थ का चिन्तन बतलाया है। 'योगदर्शन' के समाधिपाद में लिखा है:

तज्जपस्तदर्थभावनम्।—(योगदर्शन १।२८)

'उस ओ३म् का जप और उस ओ३म् के अर्थभूत ईश्वर का पुनः-पुनः चिन्तन करना चाहिये।'

इस ओ३म् का जप तथा ओ३म् के अर्थ-चिन्तन का फल यह लिखा है:

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।। १।२९।।

'उक्त स्थान से विघ्नों का अभाव और आत्मा के स्वरुप का ज्ञान भी होता है।'

इतना बड़ा महत्त्व ओ३म्-जप तथा ओ३म् के अर्थों के चिन्तन का है। मन की एकाग्रता को प्राप्त करने के यत्न में जो साधक कटिबद्ध होते हैं, उनके मार्ग में नाना विघ्न भी आकर खड़े हो जाते हैं। उन्हीं विघ्नों की ओर ऊपर के सूत्र में संकेत किया गया है और इससे अगले दो सूत्रों में (३० तथा ३१ में) उन १४ विघ्नों तथा दोषों का वर्णन है जो योगी को सताते हैं। वे ये हैं :

(१) व्याधि=शारीरिक रोग, (२) स्त्यान=योग-साधनों में प्रवृत्ति न होना, (३) संशय, (४) प्रमाद, (५) आलस्य, (६) अविरति=वैराग्य का अभाव अर्थात् विषयों में आसक्ति, (७) भ्रान्ति-दर्शन=मिथ्या ज्ञान और ऊटपटाँग विचार, (अलब्ध-भूमिकत्व=साधन करने पर भी कोई स्थिति प्राप्त न होना, अनवस्थितत्त्व=ज्योतिदर्शन होकर ज्योति का लुप्त हो जाना, (१०) दुःख=आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख, (११) दौर्मनस्य=जब इच्छा की पूर्ति न हो तो मन में एक प्रकार की अशान्ति या बेचैनी का होना, (१२) अंगमेजयत्व=शरीर के अंगों में कम्पन होना, (१३) श्वास=भीतरी कुम्भक में विघ्न होना, (१४) प्रश्वास=बाहरी कुम्भक में विघ्न होना।

ये सारे-के-सारे दोष या विक्षेप भी ओ३म् के जप और परमात्म-तत्त्व का चिन्तन और ध्यान करने से दूर हो जाते हैं। 'योग-दर्शन' के बतलाये इस सरल, सुगम, सीधे मार्ग पर चलकर देखिये तो सही कि आपको ध्यान-अवस्था प्राप्त होती है या नहीं।

ओ३म्-जप की महिमा में इतना ही कहना पर्याप्त है कि:

''जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिः पुनःपुनः।
'मन्त्र-जप सर्व सिद्धियों का अचूक मार्ग है।''

ओ३म् का जप ओ३म् का अर्थ समझते हुए जब अनन्य भाव से किया जाय तो मन की चंचलता मिटने लगती है। यह अनुभवसिद्ध तथ्य है कि जिसका स्मरण तथा जप बार-बार किया जाता है, उसके कुछ गुण उपासक में धीरे-धीरे आने लगते हैं। मनोविज्ञान के पण्डितों ने भी ये परिक्षाएँ की हैं और वे बतलाते हैं कि किसी भी बात की सूचनाएँ (Suggestion) बार-बार दुहराने से वे पुष्ट होती जाती हैं और कल्पना विश्वास के रुप में परिवर्तित होकर मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही हो जाता है। साधक जब ओ३म् का जप करता है और वह अन्तःकरण से अनुभव करता है कि यह ओ३म् पवित्र है, निश्चल है तो साधक के अन्दर पवित्रता आने लगती है और उसका मन अचल होने लगता है।

'ध्यानबिन्दूपनिषद्' में भी ओंकार (ओ३म् नाम) द्वारा ध्यान-अवस्था में पहुँचने का विधान किया गया है :

ओंकारं यो न जानाति ब्राह्मणो न भवेत्तु सः। प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ॥१४॥
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्। निवर्तन्ते क्रियाः सर्वास्तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥१५॥

'जो ओ३म् को नहीं जानता वह ब्रह्म को नहीं प्राप्त हो सकता। ओ३म् धनुष है, आत्मा स्वयं तीर है, ब्रह्म लक्ष्य है।।१५।।

जैसे एक तीरन्दाज निशाना लगाते समय तन्मय हो जाता है, उसी प्रकार ओ३म् की उपासना में तन्मय हो जाना चाहिये। ओ३म् के अतिरिक्त और कोई संकल्प-विकल्प चित्त में न आने पाय, फिर जीवात्मा ब्रह्म को प्राप्त हो जायेगा।' ॥१५॥

यही बात 'प्रश्नोपनिषद्' के ५वें प्रश्न में अधिक सुन्दरता से बतलाई गई है, वह प्रसंग 'प्रश्नोपनिषद्' से पढ़ना चाहिये।

साभारः महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती ,

विटपस्थ कालिदासों को नमन

डॉ. प्रशस्य मित्र शास्त्री

जो प्रान्त जाति भाषादि-विवाद रूपी,
ले के कुठार तरु को यदि राष्ट्र-रूपी।
हैं दीखते यदि समुद्यत काटने को,
ये कालिदास विटपस्थ इन्हें नमस्ते।।

कश्मीर-पण्डित उपेक्षित हैं सदा ही,
हैं लेह में अब उपेक्षित बौद्ध भिक्षू।
क्या अल्पसंख्यक न ये जनता यहाँ की,
मैं पूछता विटप-संस्थित कालिदासों!।।

दायित्व-बोध जिनका कुछ भी नहीं है,
जो भूल राष्ट्रहित केवल स्वार्थ साधें।
नेता सभी निरत वित्त बटोरने में,
ये कालिदास विटपस्थ इन्हें नमस्ते।।

राजनीति जिनकी 'लघु-वंश' वादी,
राष्ट्र के क्षितिज में कब अस्त होंगे?
हैं 'मेघ-दूत' बनते जिनकी सवारी,
ये कालिदास विटपस्थ इन्हें नमस्ते।।

वाग्देवता शुभकृपा वर तुल्य पाके,
जो गद्य पद्य रच के यश खूब पाया।
विद्योतमा-कृत अनावृत द्वार देखा,
हे कालिदास! कविराज ! तुम्हें नमस्ते ।।

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।